विश्व
परमात्मा का विशाल घर

लेखक :
श्री नफेसिंह देसवाल

सम्पादक :
डॉ० कृष्णावतार

शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

प्रकाशक :

शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

403/1, डी-6, सैक्टर-6, रोहिणी, दिल्ली-110085

दूरभाष : 011-27040587

Website : www.shringirishi.org

E-mail : shringirishi.vani@gmail.com

संस्करण : प्रथम

ईसवी सम्वत् : फरवरी, 2018

पुस्तक प्रतियाँ : 1100

सहयोगार्थ मूल्य : वर-वधु को आशीर्वाद

लेजर-टाइपसेटिंग :

मल्टी ग्राफिक्स

WZ-10, शादी खामपुर, चौपाल वाली गली,

वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008

मोबाइल: 9868021968

ऋग्वेद ।। ओ३म् ।। यजुर्वेद

।। कृण्वन्तोविश्वमार्यम् ।।

समर्पण

परम पूज्य गुरुदेव

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी

जिनकी असीम कृपा से मैं

आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुआ।

उनके प्रति विनम्र भाव से

सादर समर्पित।

विनीत शिष्य,

नफेसिंह देसवाल

अथर्ववेद सामवेद

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका	5
2.	प्राक्कथन	6
3.	आभार, मंगलकामना एवं आशीर्वाद	7
4.	परमात्मा से प्रार्थना	9
5.	विश्व; परमात्मा का विशाल घर	10
6.	घर की वैदिक संस्कृति	18
7.	घर की उत्पत्ति	21
8.	घर का स्वामी	25
9.	पृथिवी	29
10.	भारत-भूमि, आर्यावर्त्त	32
11.	राष्ट्र निर्माण	36
12.	आर्य पुरूष के आठ गुण	47
13.	घर में सर्वश्रेष्ठ कर्म, पञ्च महायज्ञ	51
14.	गायत्री-मन्त्र	64
15.	आत्म-निर्माण व शुद्धि	69
16.	जीवन और मृत्यु	74
17.	महाराजा मनु द्वारा सर्वप्रथम राष्ट्र-निर्माण	80
18.	भगवान श्रीरामचन्द्र	83
19.	महाराजा रावण	90
20.	तपस्विनी माता अंजना	93
21.	योगेश्वर श्रीकृष्ण	97
22.	हज़रत ज़रदुश्त (पारसी मत)	102
23.	हज़रत मूसा (यहुदी मत)	103
24.	हज़रत ईसा मसीह (ईसाई मत)	105
25.	हज़रत मुहम्मद	107
26.	स्वामी महावीर	110
27.	महात्मा बुद्ध	112
28.	स्वामी शंकराचार्य	115
29.	सिक्ख गुरूओं का महत्त्वपूर्ण योगदान	119
30.	महर्षि दयानन्द	128
31.	धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर	140
32.	राजा भोज का प्रेरक श्लोक	144
33.	वैदिक-अंक-विद्या	146
34.	ब्रह्म स्तोत्र	148
35.	वैदिक नियम	151
36.	वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना	152

भूमिका

परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा, परमपूज्य गुरूदेव के आशीर्वाद और विद्वतजनों की पुस्तकों से प्रेरणा लेकर इस पुस्तक को तैयार किया है। सारा विश्व परमात्मा का विशाल घर है। वही इस घर का नियन्ता, शासक और स्वामी है। उसी की महती कृपा से, चैतन्य देवता, जड़ देवता और सभी जीवात्मा अपने-अपने मन, वचन और शरीर से किये कर्मानुसार, शुभ और अशुभ फल भोग रहे हैं। वर्तमान काल में मानव को छोड़कर सभी प्राणी मिलजुल कर रहते हुए, परमात्मा के अटल नियमों का पालन करते हुए, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

अज्ञानता, पाखण्ड, अन्धविश्वास, अशिक्षा, संकीर्णता, विलासिता, स्वार्थपरता और लोभवश, मानव दिन-प्रतिदन अधोगति को जा रहा है। वैदिक शिक्षाओं को आचरण में न लाने के कारण, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, अहंकारी और ईर्ष्यालु हो गया है। अनेक मतों और सम्प्रदायों में विभाजित होकर मरने-मारने को तैयार रहता है।

मानव योनि सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी, अन्य योनियों के, जीवात्माओं के शरीरों का भक्षण करके घातक और हानिकारक हो गयी है। इस अद्‌भुत और विचित्र युग में अधिकतर विद्वानों की कथनी और करनी में अन्तर होने के कारण, मानव अपना जीवन ऊँचा नहीं बना पा रहा है। इस पुस्तक का लक्ष्य यही है, कि सभी जीवात्मा आपस में मिलजुल कर रहें और दूसरों को कष्ट न दें। सभी सुखी हों, निर्भय हों और रोगरहित हों, यही कामना है।

मैं अपने साथियों श्री बिशम्बर दयाल, श्री हरीराम गुप्ता, डा० रामकुमार गोयल, पं. जयनारायण कौशिक, श्री रमेश भम्बानी, श्री दयानन्द, श्री राजेन्द्र दीवान, श्री मूलचन्द, मेजर प्रेम कुमार सहगल और श्री रामबिलास सिंह का धन्यवाद करता हूँ, ये सब मेरा उत्साहवर्द्धन करते रहते हैं।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी का भी धन्यवाद करता हूँ, जो पारिवारिक दायित्वों का पूर्ण ध्यान रखती हैं।

मैं विशेष रूप से वैदिक विद्वान डॉ० कृष्णावतार जी का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक के निर्माण में अकथनीय सहयोग दिया है।

अंत में, श्री अशोक चौहान जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को यह स्वरूप देने में अकथनीय सहयोग दिया है।

नफेसिंह देसवाल

भूतपूर्व मन्त्री-वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)

प्राक्कथन

मानव की, उत्पत्ति काल से ही उसके लिए मनुर्भव अर्थात् "मननशील हो" यह उपदेश प्राप्त होता रहा है। वह अपने कर्म-भोग के कारण अच्छा या बुरा जिस भी स्थिति में स्वयं को पा रहा है, ऐसी स्थिति में उसके लिए मनन करना महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मनन करने से दोनों ही स्थिति में सम्बल मिलता है। बुरेपन से जुड़े हुए हैं तो मनन करने से श्रेष्ठत्व से जुड़ने का भाव बनता है और अगर अच्छापन है तो और सजग रूप से अच्छा बने रहने के संकल्प में दृढ़ता आती है।

अत: मनुष्य के लिए मननशील होना, स्वाध्यायशील होना, अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उसके समीप सद्विचारों का व सद्ग्रन्थों का होना बहुत आवश्यक है। सद्ग्रन्थों में आर्ष साहित्य श्रेष्ठ है, क्योंकि वह ऋषियों के चिन्तन और आचरण की भावना से गुँथा हुआ है। सत्य बोलने का आग्रह करना और जिसके जीवन में सत्य स्थापित है, उसके द्वारा आग्रह करना, दोनों में जिसके जीवन में सत्य स्थापित है उसके आग्रह का प्रभाव तीव्रता और स्थायित्व रूप में पड़ता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री नफेसिंह देसवालजी का जीवन भी मर्यादा से बंधा हुआ है, उन्होंने अपने कार्यों और अपने दायित्वों से प्रेरणादायक जीवन जीया है। ऐसे मर्यादापूर्ण जीवन जीने वाले श्री नफेसिंह देसवालजी की लेखनी से यह तीसरी पुस्तक "विश्व; परमात्मा का विशाल घर" जिसमें उन्होंने वैदिक संस्कृति के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। मनुष्य को अपने आचरण में किन-किन बातों का समावेश करना चाहिए और सम्प्रदायों की स्थिति का बहुत गम्भीरता से विश्लेषण किया है और साथ ही राष्ट्र की स्थापना के कारणों और महापुरूषों के जीवन का भी मार्मिक वर्णन किया है। वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना के माध्यम से राष्ट्र की सम्पन्नता का भाव व्यक्त किया है और राष्ट्र की उन्नति के आधार की भावना व्यक्त की है और अन्त में विभिन्न सम्प्रदायों के उदय और दृष्टि को बताते हुए धर्म और सम्प्रदाय के अन्तर और उद्देश्यों को स्पष्ट किया है। श्री नफेसिंह देसवालजी द्वारा लिखित यह पुस्तक धार्मिक और सम्प्रदायों की उन बातों को सही दिशा देने में समर्थ होगी, जो आज मानव को मानव से घृणा फैलाने का कारण बन रही है।

श्री नफेसिंह देसवालजी स्पष्ट वक्ता व मर्यादित व्यक्तित्व के धनी हैं लेकिन इस पुस्तक के लेखन से उनका एक विस्तृत चिन्तन और दृष्टि रखने वाला लेखक भी उभरकर आया है। निश्चित ही यह पुस्तक हर स्वाध्यायशील और विवेक तक पहुँचने वाले पाठक को सद्भाव से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित करेगी, ऐसी मुझे आशा है।

डॉ० कृष्णावतार

आभार, मंगलकामना एवं आशीर्वचन

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री बिशम्बर दयाल जी ने अपने पवित्र धन का पावन दान दिया है। यह पुस्तक उन्होंने अपने पौत्र श्री मनमीत सिंह दयाल (M.Tech Bio from America) और कुमारी दीक्षा गुलाटी (B.Sc. Dietician) के शुभ विवाहोत्सव के अवसर पर दिनांक 18 फरवरी, सन् 2018 को उपहार-स्वरूप भेंट की। श्री बिशम्बर दयाल जी सद्भावनाओं से ओत-प्रोत, धार्मिक और सरल हृदय के व्यक्ति हैं। इनका प्रयास रहता है कि समाज में से आपसी भेद-भाव, मत-मतान्तर व सम्प्रदाय समाप्त होकर, समाज एकाग्र हो जाए। यह विचार बड़ा सुन्दर, सुशील और महान है। ज्ञान से ही समाज तथा संसार सहज ऊँचा बन सकता है। अत: मानव का कर्त्तव्य है कि परमात्मा की महिमा को विचारे, अपने दुर्गुणों को त्यागे और शुभ कर्म करे। इनके इस प्रयास के लिए हम हार्दिक आभारी हैं और परिवार के सुख के लिए मंगलकामना प्रकट करते हैं।

इससे पूर्व भी श्री बिशम्बर दयाल जी अपने सात्त्विक आर्थिक सहयोग से दो पुस्तकें प्रकाशित करा चुके हैं। पहली पुस्तक 'महापुरुषों के जीवन रहस्य' इन्होंने अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती रमादेवी (स्वर्गवास 28.5.2012) की स्मृति में प्रकाशित करवाई थी और द्वितीय पुस्तक 'भ्रान्ति निवारण' इनके पुत्रों श्री उपेन्द्र दयाल और श्री पवन दयाल ने अपने पिता श्री बिशम्बर दयाल जी के जन्मदिन के उपलक्ष्य में प्रकाशित करवाई। इन दोनों पुस्तकों को इनके परिचितजनों और अन्य पाठकों ने बहुत पसन्द किया, जिससे प्रेरित होकर यह तीसरी पुस्तक 'विश्व; परमात्मा का विशाल घर' प्रकाशित करवाई।

ईशकृपा से समग्र परिवार धार्मिक विचारों वाला यशस्वी, श्रेष्ठ एवं सुखी है। परिवार में लोक-कल्याणार्थ भावना कूट-कूट कर भरी है। परमात्मा इन्हें अधिकाधिक आर्थिक सम्पन्नता एवं धर्म पारायणता की सुखद सामर्थ्य प्रदान करें।

पारिवारिक परिचय:— श्री बिशम्बर दयाल जी का जन्म हरियाणा के जिला गुड़गाँव (गुरूग्राम) में 15 अगस्त, सन् 1930 को एक समृद्ध, सम्पन्न और धनाढ्य परिवार में हुआ। इनके पिताजी का नाम श्री धनीराम और माताजी का नाम श्रीमती पार्वती देवी था। दोनों धार्मिक विचारों के थे। इनके

पिताजी का कपड़े का व्यापार था और गुरूग्राम छावनी आर्यसमाज के कई वर्षों तक प्रधान रहे। इनके माता-पिता की सात सन्तानें उत्पन्न हुई। पुत्रों के नाम—श्री हरिसिंह, श्री बिशम्बर दयाल, श्री भंवर लाल, श्री शिवलाल व श्री रामेश्वर और पुत्रियों के नाम—कुमारी भगवती और कुमारी विद्या देवी रखे गए।

श्री बिशम्बर दयाल जी बचपन से ही मेधावी और प्रखर बुद्धि के बालक थे। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्त्ता भी रहे। यज्ञ-हवन करना बचपन में ही सीख गए थे।

5 मई, सन् 1950 को इनका विवाह कुमारी रमादेवी के साथ धूमधाम से हुआ। इनके ससुर जी दिल्ली के करोलबाग में रहने वाले एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। अतः इन्होंने दिल्ली में ही दयाल ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन नाम से कम्पनी बनाकर सीमेन्ट का व्यापार आरम्भ किया। बिड़ला ग्रुप की सीमेन्ट की एजेन्सी लेकर परिश्रम करके पर्याप्त धन अर्जित करते हुए अपनी सन्तानों को योग्य बनाया।

2332, बस्ती पंजाबियान, पुरानी सब्जी मण्डी, दिल्ली-7 में रहते हुए, श्री बिशम्बर दयाल और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमादेवी के दो सुपुत्र और तीन सुपुत्रियाँ उत्पन्न हुई। बड़े सुपुत्र श्री उपेन्द्र दयाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मधु दयाल, पौत्र मनमीत सिंह दयाल व पौत्री कु० गरिमा दयाल, छोटे सुपुत्र श्री पवन दयाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मंजु दयाल, पौत्र श्री दीपांश दयाल व श्री अरिन दयाल, उनकी तीनों सुपुत्रियों के नाम क्रमशः श्रीमती इन्द्रा रानी, श्रीमती निर्मल देवी व श्रीमती मंजु रानी हैं। श्रीमती इन्द्रा रानी का स्वर्गवास हो चुका है। सभी अपने-अपने परिवार में धार्मिक कार्य करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

परिवार के सुसंस्कारों के कारण सभी के बच्चे धर्म में आस्था रखते हुए, अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। पुनः आभार और धन्यवाद व्यक्त करते हुए, आशा करता हूँ कि सद्ज्ञान के प्रकाशन में श्री बिशम्बर दयाल जी का सहयोग भविष्य में भी ऐसे ही प्राप्त होता रहेगा।

अन्त में परमपिता परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना है कि श्री बिशम्बर दयाल जी का जीवन दीर्घजीवी, वर्चस्वी और तेजस्वी हो।

डॉ० कृष्णावतार

परमात्मा से प्रार्थना

हे परमात्मन्! तु अनुपम है, तू संसार को चेतना प्रदान करने वाला है। हम उस चेतना को चाहते हैं, जिसमें मानव को अन्धकार प्राप्त नहीं होता, सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। जब मानव ब्रह्म-सुख में परिणित होकर, ब्रह्म चेतना में रमण करने लगता है और सर्वत्र ब्रह्म ही को दृष्टिपात करने लगता है, तो वह संसार में उज्ज्वलता को प्राप्त होता हुआ, महान मण्डल में परिणित हो जाता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता, सूर्य एक रस रहता है। हम आपकी आराधना करते हुए मानव से देवता, देवत्व से महादेवत्व चाहते हैं। हम अपने हृदय में प्रसन्नता, महत्ता और उज्ज्वलता चाहते हैं, जिससे हमारा जीवन आनन्द में परिणित होता हुआ तथा महत्ता की वेदी पर रमण करता हुआ, संसार सागर से पार हो जाए।

हे प्रभो! हमारा आपसे जो बिछुड़न हो गया था, हम उसकी पुन: सन्धि चाहते हैं। यह सन्धि तभी हो सकेगी, जब आपकी हमारे ऊपर अनुपम कृपा होगी और हम उस सन्धि करने वाले पथ के पथिक बनेंगे। हम आलस्य और प्रमाद को दूर करके, उस पथ को अपनाना चाहते हैं, जिसके अपनाने से हमारी और आपकी सन्धि हो जाए। हम लाखों, करोड़ों अथवा अरबों वर्षों से न मालूम कितना समय हो गया? जब आपसे हमारा विच्छेद हो गया था। हम पुन: से सन्धि चाहते हैं और उस वैदिक प्रकाश को अपनाना चाहते हैं, जिस प्रकाश में हमारी और आपकी सन्धि होगी। वह पथ प्रकाशमय कहलाया गया है, हम उस पथ को वास्तव में अपनाना चाहते हैं। हे भगवन्! यह संसार तो विडम्बित होता चला जा रहा है। यहाँ नाना प्रकार के विवाद होते रहते हैं। हम तो आपके समीप आकर, आपकी दया चाहते हैं।

हे प्रभो! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाला है, जीवन को उद्‌बुद्ध करने वाला है। तेरी महत्ता में हम हमेशा रमण करना चाहते हैं। अज्ञान हमें आपसे दूर ले जाता है। हम चाहते हैं कि सदैव, आपके प्रकाश व आनन्द में रमण करते रहें। मानव, आनन्द के लिए तथा जीवन की प्रतिभा को जानने के लिए उत्पन्न होता है। हमें सामर्थ्य प्रदान करो, जिससे हम आपकी महती अनुपम कृपा के द्वारा, आपकी महिमा को जानते हुए, इस संसार सागर से पार हो जाएं।

विश्व; परमात्मा का विशाल घर

विश्व—परमात्मा का विशाल घर है। इस विशाल घर में अनन्त सौर लोक अथवा जगत हैं। विश्व की विशालता प्रभु की महिमा का व्याख्यान करती है। इस घर में चैतन्य और जड़ देव सब मिलजुलकर रहते हैं। परमात्मा के अटल नियमों का पालन करते हैं। मानव एक सर्वश्रेष्ठ योनि है। इसे दूसरे प्राणियों की महत्ता को समझते हुए, उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहिए।

मानव योनि सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी अन्य योनियों के प्राणियों का भक्षण करके अपने जीवन को अधोगति में ले जा रही है। परमात्मा इस घर का नियन्ता, शासक और स्वामी है।

परमात्मा और सब देव एक विशाल घर में रहते हैं। पृथ्वी नीचे और आकाश ऊपर है। इसमें नाना प्रकार के जड़ और चैतन्य देव रहते हैं। वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश सभी इसमें हैं। इन देवों में परस्पर विरोध भी रहता है, जैसे अग्नि और जल, इनका विरोध, जगत प्रसिद्ध है। परन्तु ये सब देव विश्वरूपी घर में रहते हैं। परमेश्वर के आदेशानुसार कार्य करते हैं और उसकी आज्ञा सब मानते हैं। परमात्मा के अटल नियमों का पालन करते हुए, अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं।

इस घर में परमात्मा के दूत कभी आँख बन्द नहीं करते। दुष्टों को अपने पाशों में बान्धने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इनकी दृष्टि से कभी कोई पापी बच नहीं सकता। प्रत्येक पापी को, उसके पाप के अनुसार दण्ड देते हैं। अतः कोई भी पापी यह न समझे, कि मैं पाप करके परमात्मा के दण्ड से बच जाऊँगा। पद-पद पर उसके दूत आँख खोलकर खड़े हैं, वे तत्काल पापी को पकड़ते हैं। इन दूतों का प्रबन्धन पूर्ण है, पकड़ा गया पापी कभी-कभी अपने आपको स्वतन्त्र भी समझता है, परन्तु वह उस समय पूर्ण रीति से बन्धा हुआ होता है। परमात्मा का घर में अद्‌भुत प्रबन्ध है। अतः सब मनुष्यों को उचित है कि वे धर्मानुकूल व्यवहार करने का प्रयत्न करें।

पाप से बचें और अपना आचरण सुधारें। ऐसा संभव नहीं है कि कोई छिपकर पाप करे और वह छिपने से बच जाये। इस प्रकार विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

यदि घर में मनुष्य पुण्यमार्ग से चलने वाला होगा, तो ये ही दूत उसकी रक्षा, उतनी ही सावधानी से करते हैं। अत: पुण्यात्मा को किसी से डर नहीं लगता। प्राचीन काल के महापुरूषों के जीवन चरित्र भी अपने पास रखें और उनके समान बनने का यत्न करें। उन्होंने परमार्थ करते हुए भी संसार यात्रा किस प्रकार चलाई और कैसे परमात्मा की भक्ति करते हुए अपना जीवन सफल बनाया, उनसे शिक्षा लेकर आत्मिक उन्नति का साधन करें।

'द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और भूलोक मिलकर एक घर है' यह परमात्मा का घर है, इसमें सभी प्राणी (मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट, पतंग) मिलकर रहते हैं। जिसके घर में रहते हैं, उस घर के नियम पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। अत: ईश्वर के गुण जानकर, हम यहाँ एक घर में रहने वालों के समान रहें। किसी के साथ झगड़ा न करें, किसी को दु:ख न दें, सबको जीने दें। सारा विश्व एक घर है। सब भाई-भाई हैं। ऐसा मानकर परस्पर सहायता करें, प्रेम करें, एकता रखें और एकभाव बढ़ाएं। विश्व शान्ति के लिए इससे सुगम और सरल मार्ग नहीं हो सकता। सभी देश भिन्न-भिन्न होते हुए भी, यदि वहाँ के लोग, दूसरे देशों में रहने वालों को, भाई-भाई मानेंगे, तो विश्व-शान्ति अवश्य ही होगी।

घर में वाणी

मनुष्यों के अन्दर जो लड़ाई-झगड़े होते हैं, उसका कारण कटु शब्दों का प्रयोग होता है। मनुष्यों को मीठी और बलयुक्त वाणी से आपस में बातचीत करनी चाहिए। यदि मनुष्य के मन में विष भरा होता है, तो वह कटु शब्दों द्वारा बाहर आता है। कटु शब्द विषैला-वायुमण्डल उत्पन्न करते हैं। अपनी अन्त:शुद्धि करने वाला व्यक्ति कदापि कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करेगा।

मनुष्यों को ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए कि वे मीठे और नम्र हों। इससे शत्रुओं में मित्रता उत्पन्न हो सकती है और मित्रता सुदृढ़ हो सकती है। शब्दों की मधुरता के साथ, उत्साह वृद्धि करने वाले शब्द भी बोलने चाहिए।

कई परिवारों में अपने ही पुत्र को 'गुलाम, तू मरेगा, तू बड़ा हराम है, तू हरामजादा है, नीच है, घटिया' है आदि नामों से पुकारते हैं। ऐसे शब्दों से अपनी वाणी तो मलीन होती ही है, परन्तु ये शब्द जो-जो सुनते हैं, उनके मन में भी निर्बलता पनपती है। अतः मनुष्य को उचित है कि उत्साहपूर्ण, बलशाली व प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग करे। बच्चों के नाम भी सार्थक रखने चाहिए। जैसे कूड़ाराम के स्थान निर्भय और दास के स्थान पर आर्य आदि नामों से उच्चारण करना चाहिए।

विश्व घर में देवता

परमपिता परमात्मा देवों के भी देव अर्थात् महादेव हैं। उनकी आराधना करना, उनकी महिमा का गुणगान करना और उनके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार अपने गुण, कर्म, स्वभाव बनाना, प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। यही वास्तविक देव पूजा कहलाती है। प्रत्येक वेद-मन्त्र में परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया गया है और उसकी गाथा को गाया गया है। वेद-वाणी द्वारा उसका वर्णन किया गया है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त है कि उस मनोहर देव की आभा में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत हो रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काल तक कोई ऐसा वैज्ञानिक नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को मापने वाला हो। परमात्मा सीमा से रहित है, वह सीमा में आने वाला नहीं है। वह सीमा में बद्ध नहीं होता, सीमा उसके अन्तर्गत रहती है। वह सूत्र रूप में रहता है और यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, उस एक ही सूत्र में पिरोया हुआ प्रतीत होता है। उसके सन्निधान मात्र से ब्रह्माण्ड गति कर रहा है।

अतः हमें उस महान देव की उपासना करनी चाहिये, उसका पूजन करना चाहिए। पूजन का अभिप्राय यह कि उसके नियम व अनुशासन में रहना चाहिए। परमात्मा का संविधान वेद है, उसके अनुसार अपना जीवन बनाना ही मानव का कर्त्तव्य है।

इसके अतिरिक्त चैतन्य देवों और जड़ देवों की पूजा करनी चाहिये। माता-पिता, गुरू, आचार्यों, विद्वानों की यथार्थ सेवा ही उनकी पूजा है। जड़ देवों का अपने जीवन में सदुपयोग करना और उनके गुणों को धारण करना ही उनकी पूजा है।

चैतन्य देवता वे कहलाते हैं, जो आचार्य या ऋषि बनकर लोगों को सन्मार्ग पर लगाते हैं। अपना सदुपदेश देकर मानवों की गति ऊँची करते हैं। राष्ट्र और समाज को ऊँचा बना देते हैं। उनके तपे हुए विचारों को ग्रहण करके, मानव का अन्तरात्मा गद्‌गद् हो जाता है। समाज में मानवता का प्रसार हो जाता है। मानव के जीवन में सार्थकता आ जाती है।

त्रेता काल में मर्यादा पुरूषोत्तम राम जब बाल्यकाल में महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत होते थे, तो वे ब्रह्म ज्ञान की और राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चा करते थे। कर्मों पर विचार करते हुए, उन्होंने कहा, "मानव का व्यापक कर्म मानव को धर्म में ले जाता है और संकीर्ण कर्म मानव को पाप में ले जाता है।"

राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि मानव जड़वत स्थिति को भी प्राप्त होता रहता है अथवा नहीं? महर्षि वशिष्ठ ने कहा, "हे राम! मानव तो जड़वत स्थिति को सदैव प्राप्त होता रहता है, क्योंकि जितने प्रकृति के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, उतना मानव जड़ता को प्राप्त होता रहता है, जड़ता आती रहती है। जितने चैतन्य के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् परमात्मा के गुण प्रवेश कर जाते हैं, उतनी ही चेतनता प्राप्त होती रहती है। मोक्ष के मार्ग को जाता रहता है।"

यह विचार विनियम हो ही रहा था, कि इतने में उनके आश्रम में एक कीड़ा क्रीड़ा कर रहा था। जब वह क्रीड़ा कर रहा था, तो राम ने ऋषि से पूछा कि गुरूदेव, मैं यह जानना चाहता हूँ, यह जो कीड़ा आश्रम में क्रीड़ा कर रहा है, इसने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिससे यह कीड़े की योनि में है?

ऋषि ने कहा कि यह जो कीड़ा क्रीड़ा कर रहा है, यह जब से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है अर्थात् सृष्टि का निर्माण हुआ है, यह कीड़ा तीन समय (बार) इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर गया, परन्तु उसके पश्चात् भी यह कीड़ा का कीड़ा ही है, कर्म का चक्र इतना विचित्र है। राम ने कहा, "प्रभु! इसने कौन-सा ऐसा कर्म किया।" ऋषि ने कहा कि जब यह इन्द्र बन गया, अपने राष्ट्र में उस राजा को इन्द्र कहते हैं जो प्रजा के साथ 101 यज्ञ करता है, वह राजाओं का अधिराज कहलाता है। परन्तु जो राजा बन जाने के पश्चात् अपने जीवन को महान नहीं बना पाते, निम्न कोटि के कर्मों में संलग्न

रहते हैं, निम्न योनि को प्राप्त होते हैं।

मृत्यु समय जब आत्मा किये हुए कर्मों के अनुसार, वह जो संकीर्णता है, जो अव्यापक कर्म हैं, उनके आधार पर निम्नता को प्राप्त होता हुआ, अगले जन्मों में और भी निम्न बन जाते हैं। परिणाम यह होता है कि ये कीड़े बन जाते हैं और अपने-अपने आंगन में क्रीड़ा करते रहते हैं। इनकी इन्द्र की उपाधि समाप्त हो जाती है। यदि इन्द्र अपने जीवन में यागमय, ऊँचे कर्म करते रहते, तो इन्द्र की उपाधि निम्नता को प्राप्त नहीं होती और ऊर्ध्व गति बनी रहती। परन्तु कर्मों की गति मानव को कहाँ से कहाँ ले जाती है। यह सुनकर राम मौन होकर, अपने गुरू की वार्त्ता को विचार कर मग्न हो गए। वास्तव में गुरूओं के ज्ञान से निराभमानता आती है। शिष्य व्रती बनते हैं। उनमें यौगिकता और नम्रता आती है। चैतन्य देवता वही कहलाते हैं, जो ब्रह्म विद्या को धारण कर, राष्ट्र को समाज को महान बना देते हैं। वे प्रजा को ऊँचा बनाने में संलग्न होते हैं।

जड़ देवता - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश। पृथ्वी हमारी जननी कहलाती है। माता के गर्भ से पृथक् होकर मानव पृथ्वी पर आता है। पृथ्वी उसे अपने में धारण कर लेती है। नाना प्रकार के पदार्थों को देती है। पृथ्वी को वसुन्धरा भी कहते हैं क्योंकि इसी पर सब बसते हैं। नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों को प्राप्त करके मानव जीवन को उज्ज्वल बनाता है। अत: पृथ्वी देवता कहलाती है।

पृथ्वी के गर्भ में नाना वैज्ञानिक प्रवेश करके अग्नि के भण्डार को दृष्टिपात करते हैं। अग्नि जल को शक्तिशाली बनाती है। जल से वाहन, वायुयान और विमान गति करते हैं। पृथ्वी और समुद्र में नाना यन्त्र गति करते रहते हैं। यह सब पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त होता है। यह सब खनिज कहलाता है।

पृथ्वी में कहीं स्वर्ण की धातु का और कहीं रत्न आदि धातुओं का निर्माण होता रहता है। खाद्यान्नों का निर्माण होता रहता है, जिससे मानव का जीवन उज्ज्वल बनता है। पृथ्वी माता गौ और धेनु भी कहलाती है। पृथ्वी का सदुपयोग करने को ही पृथ्वी की पूजा कहते हैं। पृथ्वी के गुणों को धारण करना भी पृथ्वी की पूजा कहलाती है।

वैद्यराज पृथ्वी से नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित करके विभिन्न

औषधियाँ बनाता है, जिससे मानव के जीवन में प्राणशक्ति आती है। औषधियों को जान करके, अनुसन्धान करके उन्हें उपयोग में लाना ही पृथ्वी माता की पूजा कहलाती है।

नाना प्रकार के खनिजों व जलों को जानकर, वैज्ञानिक नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण करते हैं। ये वाहन चन्द्र लोक, सूर्य लोक और बुध लोक आदि की ओर गति करते हैं। पृथ्वी हमें जीवन की आभा को प्रकट कराती रहती है। जल और पृथ्वी की तरंगें, जानकर वैज्ञानिक, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाते हैं। बिखरे हुए परमाणुओं को एकत्रित करने वाला जल होता है। जल शीतल होता है, जिसे पीकर मानव का कंठ अमृतमय हो जाता है। वाणी भी अमृतमय हो जाती है। बहने वाली वस्तु का नाम जल कहलाया गया है। माता के गर्भस्थल में मानव का निर्माण भी इसी प्रकार होता है। नाना अस्थियों का व अन्य चक्षु आदि इन्द्रियों का निर्माण हो जाता है। गर्भ में तीन माह तक रस परिपक्व बनता है। अग्नि और प्राणों की तरंगों में तपता रहता है। चतुर्थ माह के अन्त तक मानव के सर्व शरीर का निर्माण हो जाता है।

जल ही वाष्पित होकर मेघ-मण्डल बनाते हैं। धीमी-धीमी वृष्टि होती है, जिससे कृषि उपजाऊ बन जाती है। मानव जल का आचमन करता हुआ कहता है, जल मेरा ओढना है और जल ही मेरा नीचे का आसन है। ऐसा बोलकर तीन जल से आचमन करता है। जल ही रसों में परिणित होकर, मानव के शरीर की नस-नाड़ियों में जाता है।

जल ही पृथ्वी को शीतल बनाता है। यह हिमालय से लेकर समुद्र तक गति कर रहा है। पृथ्वी के अन्तर्गत मेखला बनाकर रह रहा है। अग्नि से वनस्पतियों में जो विषैले परमाणु उत्पन्न होते हैं, उनको जल निगलता रहता है। समुद्र विषैले परमाणु, जो काम, क्रोध, मोह, लोभ व अहंकार से उत्पन्न होते हैं, उन्हें निगलकर, शुद्ध परमाणु देकर, मानव के जीवन को सुचारू रूप से संचालन करने में सहायता देता है।

जड़ देवताओं का सदुपयोग करना ही उनकी पूजा है। नदियों का जल शाखाओं में बटकर, किसानों की कृषि में जाकर अन्न उत्पन्न करता है। अन्न का जल ही प्राण है। पृथ्वी के गर्भ में भी जल है जो नाना रूपों को लेकर के, नाना रूपों में ही संसार को उत्पन्न करता रहता है। नदियों में जल भ्रमण

कर रहा है। अन्तरिक्ष में मेघों में परिणित हो रहा है। मानव जब उसका सदुपयोग करता है, तो वह जल की पूजा कहलाई जाती है।

जल की पूजा करने वाले संसार में गायक भी हुए हैं। जब राजा नल गान गाते थे, योगेश्वर श्रीकृष्ण भी जब गान गाते थे, तो गान गाने से ही, मेघों के मेघ उत्पन्न हो करके, वृष्टि हो जाया करती थी। यही तो वास्तविक पूजन है। मानव देवताओं का पूजन करके देवत्व को प्राप्त कर सकते हैं। अत: देवताओं की पूजा करना मानव का कर्त्तव्य है।

अग्नि कई प्रकार की होती है और कई प्रकार से ही पूजा की जाती है। एक अग्नि वह है, जिस अग्नि में यजमान विद्यमान होकर यज्ञ करता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की आहुति देता है। एक अग्नि वह है जो साधारण रूपों में रमण करती है। एक अग्नि वह है जिस पर वाणी से उच्चारण किया हुआ शब्द, अन्तरिक्ष में चित्र सहित रमण कर जाता है। अग्नि की धाराओं पर विराजमान होकर द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता है। एक ब्रह्माग्नि है, जिससे आत्मा चेतता है और सरस्वती विद्या में परिणित हो जाता है।

जो अग्नि काष्ठ में विद्यमान है, उसे अग्नि के सन्निधान मात्र से हम प्रदीप्त करते हैं, वही अग्नि संगतिकरण में परिणित हो जाती है। इसी प्रकार माता अग्नि में भोजन तपाती है और मानव तृप्त होता है। अग्नि से हम नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण कर सकते हैं। अग्नि में सुगन्धि देना ही उसकी पूजा है। सुगन्धि से संसार ऊँचा बनता है। द्यौ लोक में रमण करने वाली अग्नि, जो परमाणु रूपों में रहती है, वह अन्तरिक्ष में मेघों को ऊँचा बनाती रहती है। समुद्रों के जलों का वही उत्थान करती है। अग्नि का ही रूप विद्युत बन करके, जलों का उत्थान करती है। उसी विद्युत को शचि कहते हैं।

वायु - मानव के शरीर में पाँच प्राण कार्य करते हैं। वैसे ये एक ही प्राण के विभिन्न नाम होते हैं। जैसे प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। ये पाँचों ही प्राण भूमण्डल में गति कर रहे हैं। इन्हीं के द्वारा वायु का शोधन भी होता है। एक वायु वह है, जो मानव शरीर में, नाभि केन्द्र से लेकर के नाना नस-नाड़ियों में और ब्रह्मरन्ध्र में होती हुई, घ्राण के द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवेश कर जाती है।

द्वितीय वायु वह है, जिसे हम अपान कहते हैं। अपान वायु का केन्द्र नाभि से निचला स्थान है। अपान वायु का सम्बन्ध जल से होता है। मानव

शरीर से मल को त्यागना वायु का ही कार्य है। तृतीय प्राण समान है। नाना प्रकार की वनस्पतियों के रसों को लेकर वह सर्वत्र नस-नाड़ियों में परिणित कर देता है। उपस्थ द्वारा मूत्र निकालना वायु का ही कार्य है। चतुर्थ प्राण व्यान कहलाता है-यह सर्वत्र शरीर का निरीक्षण करता है। यह प्रत्येक नस-नाड़ी में रस पहुँचाने का कार्य करता है।

पंचम प्राण उदान कहलाता है। उदान प्राण जो कुछ भी हम आहार करते हैं, उसको निचली गति करा देता है। मानव का जब अन्तिम समय आता है, आत्मा इस शरीर को त्यागने लगता है, तो उस समय उदान प्राण के ऊपर यह आत्मा विश्राम करता है। चित्त से समन्वय करता है। चित्त का संकल्प उदान के द्वारा होता हुआ, आत्मा के समीप हो जाता है। तीनों एक सूत्र में आकर शरीर से निकलते हैं और कर्मानुसार योनियों को प्राप्त हो जाते हैं।

मानव शरीर की तरह, ब्रह्माण्ड में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की वायु, अपना-अपना कार्य करती है। वायु को यानों के संचालन में भी, यन्त्रों में परिणित करके, उपयोग में लाया जाता है। जहाँ वायु नहीं होती, वहाँ अग्नि प्रदीप्त नहीं होती। सभी जड़ देवता एक-दूसरे के पूरक हैं और एक-दूसरे की आभा में रमण कर रहे हैं।

★ जो समाज में अच्छाइयों को उत्पन्न नहीं करता, वह समाज का ऋणी है।
★ जो राजा ऊँचे विचारों को स्वीकार नहीं करता, वह राजा राष्ट्र का ऋणी है।
★ देवता वह मनुष्य कहलाता है जो दूसरे जीवों की रक्षा करता है।
★ जब मानव की संकल्प शक्ति ऊँची बन जाती है तो उससे मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।
★ प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाले पामर कहलाते हैं।

घर की वैदिक संस्कृति

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् (यजुर्वेद-32/8)

वैदिक संस्कृति ऐसी अद्वितीय संस्कृति है, जिसके अपनाने/आचरण में लाने से सारा संसार एक घौंसले/परिवार के समान प्रतीत होता है।

वैदिक संस्कृति में सदा नवीनता बनी रहती है। इसमें किसी भी काल में वृद्धपन नहीं आता, क्योंकि यह परमपिता परमात्मा की आभा है। वृद्धपन उन वस्तुओं में आता है, जिनका निर्माण होता है। मानव शरीर में वृद्धपन आता है, क्योंकि उसका निर्माण माता के गर्भस्थल में हुआ है। पंच महाभौतिक परमाणुओं के मिलान करने वाला कोई है। मानव शरीर में बाल्यकाल तथा वृद्धपन आता है, तथा एक समय वह आता है, कि उसका रूपान्तर हो जाता है (मृत्यु के पश्चात्)। वेदों का ज्ञान सदैव उसी रूप में बना रहता है, जैसे करोड़ों वर्ष पूर्व था। क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ है, वह एक चेतना है, उस चेतना का न कभी निर्माण हुआ है और न होगा। वह सदा एकरस बना रहता है, उसमें वृद्धपन नहीं आता, इसीलिए उसके ज्ञान-विज्ञान में भी वृद्धपन नहीं आता।

वैदिक संस्कृति में न कभी वृद्धपन आता है और न ह्रास ही होता है, सदैव नवीनता बनी रहती है। वैदिक साहित्य तथा वैदिक परम्परा पर मानव को सदैव विचार करना चाहिए। इसके ज्ञान में मानव की सम्पदा है। जब मानव इस पर विचार करता है, तो उसको वैदिक प्रकाश मिलता है। वह धर्म के मर्म को जान लेता है। वैदिक-संस्कृति की सम्पदा तो वैदिक ज्ञान में ही है।

वैदिक संस्कृति वह अमूल्य बीज है, वह अमूल्य बिन्दु है, जिसमें इस संसार का ज्ञान और विज्ञान है। जो मानव इस संस्कृति को अपनाता है, उसके जीवन में अन्धकार नहीं होता, मानवता होती है। वेद के आधार पर ऐसे-ऐसे आविष्कार किए जा सकते हैं कि हमारा मस्तिष्क चकित हो जाता है। संसार में जितना विद्यावाद है, प्रकाश है, वह वैदिक संस्कृति की ही प्रतिभा है।

वेद की त्रिविद्या—ज्ञान, कर्म, उपासना, ओ३म् रूपी धागे में पिरोई हुई है। अत: प्रत्येक वेद-मन्त्र के आरम्भ में 'ओ३म्' का उच्चारण किया जाता है। 'ओ३म्' धागा है, तथा वेद की ऋचाएं मनके हैं। प्रत्येक वेद-मन्त्र के पूर्व 'ओ३म्' उच्चारण करने से, एक प्रकार की माला बन जाती है। इसीलिए इस प्रकार के पठन-पाठन के क्रम को माला पाठ कहते हैं। मन्त्र का उच्चारण बिना 'ओ३म्' के न तो शुद्ध, पवित्र ही होता है और न सुन्दर ही लगता है।

प्रकृति के कण-कण में रमण होने से, क्रियाशील बनने से प्रभु शब्द बनता है अर्थात् 'ओ३म्' शब्द बनता है। उसको परमात्मा, ईश्वर, विष्णु आदि नामों से पुकारा जाता है। वेद की प्रत्येक ऋचा के आरम्भ में इसी 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण किया जाता है।

वेद की विद्या के द्वारा यह संसार ऊँचा बनता चला जाता है। ऋषियों की कल्पना यही रही है, कि विश्व का कल्याण हो। वेद किसी व्यक्ति विशेष या किसी देश की सम्पत्ति नहीं। यह तो विश्व के प्रत्येक प्राणी के लिए कल्याणकारी है। जब कोई उसे व्यक्तिवाद सम्पत्ति समझने लगता है, तो संकीर्णता आ जाती है और तब इससे विश्व का कल्याण करने की कल्पना नहीं की जा सकती।

वेदों का ज्ञान बहुत गम्भीर है, हमें उसके ऊपर गौरव होना चाहिए। प्रभु ने हमें इसलिए दिया है, क्योंकि जीव (आत्मा) प्रभु के प्रिय पुत्र व पुत्रियाँ हैं। हम वैदिक संस्कृति के मार्ग से प्रकृति के आवेशों को त्यागकर अपनी मानवता को जानते रहें। प्रभु ने ऐसा उसमें संकेत दिया है। हमें योग की प्रक्रिया में जाकर प्रभु को जानना चाहिए।

वेद रूपी प्रकाश को जानने के लिए हमें आर्य बनना है। प्रकाश में चलने वाले को आर्य कहते हैं तथा अन्धकार में चलने वाले को अनार्य कहते हैं। महाभारत काल से पहले कन्याएं भी ब्रह्मवेत्ता होती थी। विद्या को धारण करने वाली कन्याएं वेदों का अध्ययन करती थी। वेदों की विदुषियों ने अपने जीवन को निचोड़ा और निचोड़कर संसार के समक्ष नियुक्त किया। माता मदालसा, गार्गी आदि का जीवन मानवता के लिए प्रेरणादायक है।

वेद की विद्या को पाने का अधिकार उन सभी को है, जो उसके अनुकूल चलने वाला हो, वह चाहे किसी कुल, जाति व सम्प्रदाय में उत्पन्न हुआ हो।

वैदिक संस्कृति सभी संस्कृतियों की मूल है। मूल में ही सब एकत्रित हो सकते हैं। वेदों का मूल कारण परमपिता परमात्मा है, जो लोक-लोकान्तरों का स्वामी है। अत: वेद तो सभी लोक-लोकान्तरों में है, क्योंकि यह उसकी अपने पुत्रों पर दयापूर्ण देन है।

वैदिक संस्कृति मानव-मात्र ही नहीं, अपितु सभी प्राणियों को जोड़ने का अद्‌भुत साधन है। यह शिक्षा देती है—

अयं निज परों वेत्ति, गणना लघु चेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह संस्कृति सभी पृथ्वी पर रहने वालों को एक परिवार की तरह रहना सिखलाती है।

★ रूढ़ि का पनपना ही राष्ट्र में रक्त का बहना है।
★ आत्मा जब शरीर में आता है तो नग्न आता है और जब जाता है तो नग्न जाता है।
★ वेद ईश्वरीय ज्ञान है।
★ यज्ञ का रस स्वाहा है।
★ जब आहार पवित्र बनता है तो व्यवहार पवित्र बनता है।
★ जहाँ प्रीति नहीं होती, वहाँ धर्म नहीं होता।
★ द्रव्यपति वह होता है जिसके द्वारा मानवीय जीवन और दर्शन होता है।
★ आत्मा के प्रकाश से ही हम संसार के प्रकाश को दृष्टिपात करते हैं।
★ जिस काल में बुद्धिमान अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं, उस काल का नाम राम-राज्य कहा जाता है।
★ धर्म एक है, सम्प्रदाय अनेक।

घर की उत्पत्ति

सृष्टि की उत्पत्ति 1,97,29,49,118 वर्ष पूर्व

मानव सृष्टि 1,96,08,53,118 वर्ष पूर्व

जैसे मकड़ी किसी बाहर के पदार्थ को न लेकर अपने अन्दर विद्यमान पदार्थ से जाल बनाती है और उसके बाद उस जाल को अपने अन्दर ही ले लेती है, वैसे ही सर्वव्यापक परमात्मा अपने अन्दर स्थित प्रकृति से जगत का सृजन करता है और अपने अन्दर ही, उसको प्रलय करके स्थित कर लेता है। जैसे पृथ्वी में बीज डालने पर अपना-अपना वृक्ष उग आता है, वैसे ही परमात्मा की सत्ता में जीवों के अपने-अपने कर्मों से उनके शरीरों का निर्माण प्रभु करता है। प्राणों के साथ सम्पर्क होने पर ही जीव, जीवात्मा कहलाता है। शरीर के अन्दर जीवात्मा होने पर, कटे हुए केश स्वयं बढ़ते हैं, कटे हुए नाखून स्वयं बढ़ते हैं और यदि घाव हो जाए, तो स्वयं भर जाता है। परन्तु शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर, न कटे हुए केश बढ़ते हैं, न नाखून बढ़ते हैं और न ही घाव स्वयं भरता है। जैसे जीवात्मा की शरीर के अन्दर सत्ता रहते, सब कार्य होते रहते हैं, वैसे ही इस समस्त ब्रह्माण्ड में, महान सत्ता परमात्मा के रहने से सृष्टि और प्रलय होते रहते हैं।

उत्पत्ति का क्रम—परमात्मा प्रकृति की साम्यावस्था को ईक्षण द्वारा अर्थात् समुन्नत तप द्वारा परमसूक्ष्म पदार्थों को (सत्त्व, रज, तम) इक्ट्ठा करता है। प्रथम सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल होता है, उसका नाम महत्तत्व, और जो उससे कुछ स्थूल होता है, उसका नाम अहंकार होता है। अहंकार से पांच तन्त्रमात्राएं क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उत्पन्न होती हैं। इन्हीं तन्त्रमात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी स्थूल भूत उत्पन्न हो जाते हैं।

पंच-महाभूतों का उत्पत्ति क्रम और गुणों की तालिका

1. आकाश — निजी गुण शब्द
2. वायु — निजी गुण - शब्द और स्पर्श

3. अग्नि – निजी गुण - शब्द, स्पर्श और रूप
4. जल – निजी गुण, शब्द, स्पर्श, रूप और रस
5. पृथ्वी – निजी गुण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध

सृष्टि के आरम्भ में वेद शब्दों द्वारा ही प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान मानव-जाति को हुआ।

प्रकृति जड़ होने से स्वयं इस प्रसूत जगत् का भोग नहीं कर सकती। परमात्मा सत्यसंकल्प, पूर्णकाम एवं स्वप्रकाश है। वह अपने रूप में एकमात्र तत्त्व है। सभी आत्मा प्रकृति के भोक्ता होते हैं। परमात्मा प्रेरयिता, आत्मा भोक्ता और प्रकृति भोग्य कहलाती है। यह क्रम अनादिकाल से चालू है। ईश्वर सर्वोच्च चेतन शक्ति है।

जगती का अर्थ है 'गतिवाली', जगत् का अर्थ है 'गतिमान'। संसार का सभी कुछ गतिमान है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र व तारों में गति है। इनके एक-एक अणु में गति है। क्या गति यूँ ही हो रही है? नहीं, इस गति का कोई देने वाला है। कोई ईश है, कोई स्वामी है। वह स्वामी कहीं अलग बैठा गति नहीं दे रहा है। उसकी सत्ता एक-एक अणु में बसी है। तब तो यह सब उसी का है। हमारा क्या है? अगर मनुष्य यह धारण करले कि विश्व का स्वामी परमात्मा है, तो वह संसार का उपभोग किस बुद्धि से करेगा? वह यही तो समझेगा, कि उसी का दिया खाता हूँ, उसका दिया पीता हूँ और उसी का दिया हुआ काम में लाता हूँ।

वह संसार के पदार्थों का भोग करेगा, परन्तु यह समझकर कि यह सब उसका है, मेरा नहीं। वह भोग करेगा, परन्तु त्याग-बुद्धि से। वह निष्काम कार्य करेगा। वह 'इदं न मम' का वास्तविक अर्थ समझने लगेगा।

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक रूपवाले और दूसरे रूपरहित। आत्मा और परमात्मा रूपरहित हैं। प्रकृति से सम्पूर्ण जगत रूपवाले पदार्थों से भरा हुआ है। पदार्थों के विविध रूप जो मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति और पाषाण आदि में दिखाई देते हैं—कौन धारण करता है? ये रूप कैसे बनते हैं। इस शंका के उत्तर में वेद कह रहा है, कि जगत् के मूल में सात पदार्थ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँच स्थूल भूत, तन्मात्रा और अहंकार हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत् में दिखाई देने वाले विविध रूप धारण करते हैं। ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओं में गुजरते हुए, जगत् के रूप और आकार

धारण करते हैं। तीन अवस्था—(1) सत्त्व अर्थात् समावस्था, (2) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था, (3) तम अर्थात् गतिहीन अवस्था। इन तीन अवस्थाओं में सातों पदार्थ गुजरकर कुल इक्कीस पदार्थ बनते हैं, जो सम्पूर्ण सृष्टि का रूप धारण करते हैं।

"ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।"

(अथर्ववेद 1/1)

अर्थात्—सब रूपों को धारण करके जो तीन-गुणा-सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं, उनके शरीर के बल, वाणी का स्वामी आज मुझे देवे।

जनसामान्य में सुना जाता है कि जीवात्मा 84 लाख योनियों में अपने कर्मानुसार जन्म धारण करता है। मुझे आर्ष ग्रन्थों में जो कुछ थोड़ा बहुत पढ़ने को मिला, वहाँ 84 लाख योनियों का वर्णन नहीं आया। परन्तु दो विद्वानों ने अपनी-अपनी पुस्तक में निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया है, इन पर विचार कर मानना या न मानना पाठकों पर निर्भर करता है:—

1. श्री व्रतपाल सिद्धान्त शास्त्री की पुस्तक

वैदिक सृष्टि विज्ञान श्लोक है:—

"जलजा नवलक्षाश्च, दशलक्षाश्च पक्षिणः।
कृमयो रूद्रलक्षाश्च, विंशल्लक्षाश्च गवादयः।
स्थावरस्त्रिंशलक्षाश्च, चतुर्लक्षाश्च मानवाः।
पापपुण्य समं कृत्वा, नरयोनिषु जायते।।"

(दाशबोध)

अर्थात्-वृक्ष, वनस्पति, औषधि के पत्तों, टहनियों, फलों, जड़ों और फूलों में 30 लाख योनियाँ (शरीर), जलचर 9 लाख, पक्षी 10 लाख, कृमि योनि 11 लाख और पशु 20 लाख प्रकार के हैं। मानव के शरीर चार लाख प्रकार के बताये हैं। इस प्रकार 84 लाख योनियाँ हैं। यह अन्वेषण का विषय है।

2. स्वामी रमेशचन्द्रानन्द ने अपनी पुस्तक 'योग' में निम्नलिखित योनियाँ लिखी हैं:—

1. जल में 9 लाख
2. पृथ्वी पर 9 लाख
3. वृक्षों में पौधों में—20 लाख

4. पक्षी—10 लाख
5. पशु—30 लाख
6. मानव—4 लाख
7. बन्दर—2 लाख

दोनों ने कुछ समान और कुछ भिन्न योनियाँ मानी हैं। पाठक विचार कर लें।

नोटः- वृक्षों एवं वनस्पति जगत् में सामान्य प्राण होता है, किसी भी जीवात्मा की योनि इनमें जन्म धारण नहीं करती। इनके पत्तों, जड़ों व फूलों में योनियाँ बनती हैं। जैसे गूलर आदि के फल में।

★ अन्त:करण और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म का सबसे बड़ा लक्षण है।
★ सत्य को सत्य मानने या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।
★ अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करने को विवेक कहते हैं।
★ मानव में ज्ञान और विवेक का अभाव ही अन्धकार कहलाता है।
★ अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश कहते हैं।
★ मानव का जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है।
★ जब द्रव्य का दुरुपयोग होता है तो यह द्रव्य उसी मानव के पुण्य को निगल जाता है।
★ राष्ट्र का सबसे बड़ा भूषण सदाचार है।
★ राष्ट्र का निर्माण धर्म की रक्षा करने के लिए किया जाता है।
★ जब मानव का पुण्य उदय होता है तो मानव का विकास होता चला जाता है।
★ जब मानव के समक्ष पाप आता है तो वह अधोगति में चला जाता है।
★ जहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है, वहाँ स्वार्थ होता है।
★ जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ विनाशिता होती है और जहाँ विनाशिता होती है वहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

घर का स्वामी

घर का स्वामी और समस्त पदार्थों का दाता परमेश्वर है। मनुष्य को पुरूषार्थ करने के बाद उसी से माँगना चाहिए। उससे माँगने का प्रत्येक को अधिकार है। वह सबका माता-पिता व बन्धु है। उससे सभी माँगते हैं—चाहे राजा हों, चाहे रंक।

एक मनोरंजक कहानी है, कि एक बार बादशाह अकबर भ्रमण करता हुआ मार्ग में भटक गया और सुबह दिन के लगभग दस बजे एक किसान के खेत में पहुँच गया। किसान खेत में हल चला रहा था। उसी समय किसान की पत्नी नाश्ता लेकर आ गई। आगन्तुक को देखकर शिष्टाचारवश किसान ने नाश्ता करने को कहा। बादशाह थका हुआ था और भूख तथा प्यास दोनों ही उसे व्याकुल कर रही थी। अत: किसान के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। किसान ने मिस्सी रोटियों का आधा भाग उसे दे दिया, साथ में कुछ लस्सी और मक्खन भी दिया। भूख में बादशाह को नाश्ता बहुत रूचिकर लगा और भूख से तृप्त हो गया।

चलते हुए किसान का धन्यवाद किया और अपना परिचय देते हुए कहा कि, "भाई मेरा नाम अकबर है। मैं इस देश का बादशाह हूँ, आगरा में रहता हूँ। मैं तुम्हारे इस उपकार को याद रखूँगा। तुम पर कभी कोई संकट आ जाये तो मेरे पास अवश्य आना, तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा।"

कुछ महीनों बाद वर्षा के अभाव में किसान की फसल नष्ट हो गई। उसे आर्थिक संकट ने घेर लिया। किसान की पत्नी ने बादशाह अकबर से सहायता लेने की बात सुझाई और कहा, "आगरा दूर तो है नहीं, उसके पास क्यों नहीं चले जाते? वह अवश्य सहायता करेगा।" कृषक ने कहा, "कि क्या पता वह पहचानेगा भी कि नहीं?" पत्नी ने उत्तर दिया, "पहले से धारणा क्यों बनाते हो? तुम जाओ तो सही, यदि न पहचाने तो लौट आना।"

किसान ने आगरा पहुँचकर, एक शहरी व्यक्ति से देहाती ढंग से पूछा, "भाई, यहाँ अकबर कहाँ रहता है? मैं उससे मिलने आया हूँ।" शहरी व्यक्ति

ने कहा, "वह बादशाह है। शहर के सबसे बढ़िया और ऊँचे महल में रहता है। वहाँ जाकर किसी से भी पूछ लेना, वह तुम्हें मिला देगा।"

किसान बादशाह के महल के सामने पहुँच गया। सेवकों ने उसे बादशाह के पास पहुँचा दिया। बादशाह ने किसान को पहचान लिया और उसकी कुशलता पूछी। किसान भव्य महल और साज-सामान देखकर चकित हो गया। उसने बादशाह से कहा, "अरे! अकबरा, तेरे तो बड़े ठाठ-बाट हैं। तू तो बहुत बड़ा आदमी है।"

अकबर ने किसान से आने का कारण पूछा। किसान ने अपनी आर्थिक तंगी का सब हाल सुना दिया। बादशाह ने उसे सहातया का आश्वासन दिया और एक-दो दिन वहीं विश्राम करने को कहा। अतिथि गृह में उसके ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। सायंकाल बादशाह किसान से मिला। नमाज का समय होने पर उससे कहा, "मैं थोड़ा भगवान का नाम ले लूँ, तुम यहाँ बैठो।" यह कहकर बादशाह नमाज अदा करने चला गया। किसान खिड़की में से देखने लगा कि यह क्या रहा है? मुसलमान लोग नमाज की समाप्ति पर दोनों हाथ फैलाकर अल्लाह (भगवान्) से दुआ माँगते हैं। ऐसा ही बादशाह ने भी किया। किसान के लिए बादशाह का हाथ फैलाना, आश्चर्य की बात थी। वह सोचने लगा, इतना बड़ा आदमी किसके सामने हाथ पसार रहा है। इसके पास कमी क्या है, जो यह माँग रहा है?

बादशाह नमाज पढ़के आया तो किसान ने पूछा, "तुम किसके सामने हाथ फैला रहे थे और क्या माँग रहे थे?"

बादशाह ने उत्तर दिया, "मैं उस भगवान् के सामने हाथ फैला रहा था, जिसने यह संसार बनाया है। मैं उससे प्रतिदिन दुआ करता हूँ। उसी ने मुझे सब कुछ दिया है।" किसान के कानों में बादशाह के ये वाक्य गूँज रहे थे, "मैं उसी से माँगता हूँ। उसी ने मुझे सब कुछ दिया है।"

अगले दिन सवेरा होते ही किसान चलने की अनुमति माँगने बादशाह के पास गया। बादशाह ने उसकी सहायता करने के बारे में पूछा, ताकि उसे पूरा करने के लिए कोषाध्यक्ष को आदेश दे सके। किसान ने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए।" बादशाह ने कहा, "क्यों, क्या हुआ? तुम अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ही तो आए थे, अब क्यों मना करते हो?" किसान ने उत्तर दिया, "अब मैं उसी से माँगूगा, जिससे तू माँगता है। जब तेरे माँगने

पर तुझे इतना देता है, तो क्या वह मुझे निर्वाह के लिए भी न देगा। वह अवश्य देगा।" इतना कहकर बिना कुछ भी लिए, किसान अपने गाँव लौट आया।

एक लोहे के गोले को जब अच्छी तरह तपाते हैं, तो वह तपकर अग्निमय होकर, दहकती हुई अग्नि की तरह लाल हो जाता है। तब उस लोहे के गोले को, यदि अग्नि कहें, तो ठीक लगता है। क्योंकि वह अग्नि की तरह लाल है और जला सकता है। यदि उसे लोहा कहा जाए, तब भी सही है, क्योंकि वह वास्तव में लोहे का ही गोला है। ठीक इसी प्रकार इस ब्रह्माण्डरूपी गोले में, ब्रह्मरूपी अग्नि, अपने सर्वव्यापकत्व गुण से, ओत-प्रोत है। इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्माग्निमय बना रहा है, ऐसी अवस्था में इस ब्रह्माण्ड को यदि प्राकृतिक जगत कहें, तब भी ठीक है क्योंकि यह प्रकृति से ही बना है और यह कहें कि यह सब ब्रह्म है, तब भी सही है, क्योंकि ब्रह्म, अग्नि की तरह प्रकृति में ओत-प्रोत है।

परमात्मा को प्राप्त करने के लिए कहीं स्थान-स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह जातवेदा है। उत्पन्न हुए, असंख्य प्रकृति आदि सब भूतों को प्राप्त हो रहा है। वह इन सबमें व्याप्त हो रहा है। वह सर्वत्र पहुँचा हुआ है। जहाँ भी तुम प्राप्त करना चाहो, वहीं वह मिल सकता है। उसे प्राप्त करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकने की आवश्यकता नहीं है।

साथ ही यह भी बात है, कि जो प्रभु को जानना चाहता है, उसको प्रभु जान लेता है। परमात्मा उत्पन्न हुए सकल जगत को जानता है। सब लोक-लोकान्तरों को और जो प्राणी इस संसार में उत्पन्न हुए हैं, उन सबको अच्छी प्रकार जानता है। वह जानता है कि, कौन क्या चाहता है? जो जिसको चाहता है, और उसके लिए यत्न करता है, वह वस्तु प्रभु द्वारा, उसको मिल जाती है।

"यान्ति देवव्रता देवान् पितृन यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मदयाजिनोऽपि माम्।।"

अर्थात्–जो देव बनना चाहते हैं, वे देव बन जाते हैं। जो पितर बनना चाहते हैं, वे पितर बन जाते हैं। (गीता)

जो प्रकृति की उपासना करते हैं, वे संसार का आनन्द लेते हैं। जो प्रभु

को पाने का यत्न करते हैं, वे प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं।

परमात्मा प्राकृतिक जगत के समान कदापि प्रत्यक्ष नहीं होता। संसार की रचना मनुष्य के हितार्थ है, यह यथार्थ है। वह सम्यक् विचार से, सत्संग सत्कार से, स्वाध्याय सदाचार से, यत्न लगातार से, प्रेम प्रीति के आधार से सच्ची लगन में मगन होकर, जितना परमात्मा प्रदत्त पदार्थों के गुणों को समझकर, अपने अनुकूल बनायेगा, उतना ही इच्छित फल सामने आयेगा।

यह ब्रह्माण्ड उस पूर्ण पुरुष की महिमा है। इसको पूर्णतया जान लेना अपूर्ण मनुष्य के वश की बात नहीं है। यदि यत्न करे, तो सुनियमों के पालन से पूर्ण पुरुष के दर्शन हो सकते हैं। माया के जाल को हटाने और इससे पीछा छुड़ाने का आत्म-साक्षात्कार ही एकमात्र उपाय है। अनेक जन्मकृत शुभ कर्मों के होने से मनुष्य की जिज्ञासा बढ़ती है और वह जानना चाहता है कि परमात्मा कैसा है?

ज्ञानपूर्वक सृष्टि की रचना, धारणा और विनाश में जो नियम सदैव काम करता है, उसको ऋषि-मुनियों ने प्रकृति में परमात्मा का 'ईक्षण' कहा है। यह नियम परमात्मा में स्थिर रूप से विद्यमान है। वही इस नियम का नियामक है। तीन प्रकार की कृति, एक ही कर्त्ता परमात्मा के आधीन है। इस नियम को जतलाने के लिए वेद में कई स्थानों पर एक-एक आवश्यक वाक्य को तीन-तीन बार कहा है। जगत में किसी वचन को तीन बार कहना, स्थिर नियम का द्योतक और सत्य का प्रकाशक माना जाता है।

जैसे—**ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः**

★ राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है।
★ राष्ट्र में यज्ञ-कर्म होना ही राष्ट्र की शान्ति है।
★ राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा।
★ राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए।
★ मिथ्या उच्चारण करने से मानव की आन्तरिक प्रतिभा नष्ट हो जाती है।
★ धर्म और मर्यादा मानव के चक्षुओं में विराजमान होती है।
★ वेद-मन्त्रों की पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है।

पृथिवी

सूर्य आदि समस्त आकाशीय पिण्ड गोल हैं। पृथिवी भी आकाशीय पिण्ड होने के कारण गोल है। योरोपियन विद्वानों को पृथिवी के गोल होने का ज्ञान, कोलम्बस की समुद्री यात्रा के पश्चात् हुआ। भारतीय आर्यों को बहुत पहले पृथिवी के गोल होने का ज्ञान था।

पृथिवी गोल है, अत: इस पर सर्वत्र रहने वाले, अपने को ऊपर और दूसरी ओर के रहने वाले को नीचे समझते हैं। वास्तव में इसके गोल होने से ऊपर नीचे कुछ नहीं है। पृथिवी का व्यास 1600 योजन बतलाया गया है। चार कोश का योजन होता है, अत: 6400 कोश का व्यास हुआ। योरोपियन विद्वान पृथिवी का व्यास लगभग 800 मील मानते हैं।

सूर्य सिद्धान्त में सवा मील का एक कोश होता है। इसलिये 6400 कोश 8000 मील के बराबर ही होते हैं। पृथिवी की परिधि लगभग 25000 मील है। यह ध्रुव को अक्ष मानकर घूमती है। सूर्य ने विश्वधात्री पृथिवी को धारण किया हुआ है। वही इसे सम्भाल कर रखता है।

पृथिवी अपने अक्ष पर टेढ़ी, मेढ़ी और बूढ़े मनुष्य की भाँति कुबड़ी होकर गति करती है। यदि पृथिवी अपने अक्ष पर टेढ़ी-मेढ़ी गति न करती तो सब स्थानों पर दिन-रात बराबर होते। दिन-रात के आठ प्रहर (पहर) होते हैं। एक प्रहर तीन घण्टे का होता है। इस प्रकार आठ प्रहरों में साठ घड़ी या 24 घण्टे (23 घण्टे 26 मिनट 4 सेकण्ड) गति करती है।

सूर्य के धरातल से पृथिवी का धरातल टेढ़ा है या कह सकते हैं कि पृथिवी सूर्य के सम्मुख अपने अक्ष पर 23¼ अंश कोण में टेढ़ी है। यह टेढ़ापन ही ऋतुओं का कारण है अन्यथा सर्वत्र ऋतु समान होती। पृथिवी की इस वार्षिक गति के कारण सर्वत्र वर्ष में दो बार दिन रात बराबर होते हैं। एक बसन्त ऋतु के आरम्भ में और दूसरा शरद् ऋतु के आरम्भ में।

प्राचीन काल में आर्य भूगोल विज्ञान के वेत्ता थे। उन्होंने पृथिवी को सप्तद्वीपा वसुमती कहा। सप्तद्वीप निम्नलिखित हैं:— (1) जम्बु द्वीप,

(2) प्लक्ष द्वीप, (3) शालमल द्वीप, (4) कुश द्वीप, (5) क्रौन्च द्वीप, (6) शाक द्वीप, (7) पुष्कर द्वीप। भारतवर्ष जम्बु द्वीप में स्थित है।

पृथिवी हमारी माता है। संसार को ओज, तेज, अन्न और वनस्पतियाँ देती है। संसार को अपने में धारण करती है। वेद कहता है, मनुष्यो! तुम पृथिवी को नमन करो। इसका अभिप्राय भुजाओं से नमन करने का नहीं है, परन्तु यह है कि पृथिवी जो तुम्हें देती है, उसे आदर के साथ ग्रहण करो। पृथिवी नाना प्रकार के पदार्थ देती है। राष्ट्र को चलाने के लिए नाना धातुएं देती है। ज्ञान-विज्ञान के द्वारा पृथिवी-तत्त्वों को जानने का नाम ही पृथिवी का आदर करना है।

पृथिवी में खनिज पदार्थों का निर्माण तपने से ही होता है। पृथिवी के तप जाने पर सूर्य की किरणों की प्रतिभा उसमें आनी प्रारम्भ हो जाती है, जिससे नाना धातुओं का जन्म हो जाता है।

दिग्-दिगन्तरों में अनेक सूर्य हैं। आजकल पदार्थ-विद्या विशारदों ने खोज कर कहा है कि इस विशाल संसार में दो अरब सूर्य हैं। अर्थात् 2 अरब सौर ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक-एक सूर्य है। हमारे सौर ब्रह्माण्ड में सूर्य सबसे बड़ा है। विशाल आकाश में कितना छोटा दीखता है? अन्तरिक्ष में एक छोटा सा कमल ही तो प्रतीत होता है। सूर्य में 13 लाख पृथिवियाँ समा सकती हैं। हमारी पृथिवी से सूर्य साढ़े चार लाख गुणा भारी है।

पृथ्वी पर जल समधरातल बनाते हुए दिन रात बहता रहता है। जल में समधरातल बनाने का स्वभाव है। बहते हुए जल के सामने गड्ढा आ जाए तो उसे भरकर आगे बढ़ता है। जल बहता हुआ समुद्र रूप में परिणित हो जाता है।

एक भाग पृथिवी और तीन भाग जल की बातें की जाती हैं। पृथिवी के एक दीखने वाले भाग को ब्रह्माण्ड कहते हैं और शेष तीन भागों पर जल फैला हुआ है। समुद्र की अधिक से अधिक गहराई 31,000 फुट अर्थात् लगभग छः मील है। पृथिवी का व्यास 8000 मील है, अतः पृथिवी समुद्र से बहुत बड़ी है। समुद्र तो उसके बाहरी भाग पर ही फैला हुआ है।

पृथिवी जब जल के अन्दर से बाहर उभरी अर्थात् पर्वतीय भूभाग के ऊपर उठ जाने से उत्तर में ऊँचा पर्वतीय भाग बाहर प्रकट हुआ, उस पर

प्रथम मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। वह स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) माना जाता है।

जहाँ से सारी मनुष्य जाति संसार में फैली, वह मूल स्थान तिब्बत ही है। सभी मतों (हिन्दु, जैन, बौद्ध, यहुदी, ईसाई और मुसलमान) के विद्वान अपनी धर्म पुस्तकों में इसी को मूल स्थान मानते हैं।

पारसियों की धर्म पुस्तकों में वर्णन है कि जहाँ सृष्टि हुई, वहाँ 10 महीने सर्दी और 2 महीने गर्मी रहती है। इनके मत में 'ईरानवेज' मूल स्थान है। यहाँ के निवासी इस स्थान को स्वर्ग और अपने को आर्य कहते हैं। यह देश उस समय तिब्बत तक फैला था।

★ जो समाज में अच्छाईयाँ ला देता है, वह आर्य कहलाता है।
★ धर्म व्यापकता को कहते हैं और अधर्म संकीर्णता को।
★ हृदय रूपी गुफा में ही तो प्यारा प्रभु ओत-प्रोत है।
★ विवेक में मान-अपमान नहीं होता।
★ जो मानव संकल्प धारण करता है, उसका जीवन महान बना करता है।
★ जब कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है।
★ अशुद्ध आहार करने से अशुद्ध तरंगों का जन्म होता है और शुद्ध आहार करने से शुद्ध तरंगों का जन्म होता है।
★ आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्म तो बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता।
★ जो जिसके निकट जाता है उसके परमाणुओं उसमें आ जाते हैं।
★ जीवन श्वासों पर आधारित है।
★ योगाभ्यास से चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक आयु हो सकती है।
★ जीवात्मा ज्ञान के द्वारा प्रभु को जान लेता है और प्रयत्न के द्वारा उसमें रमण करता रहता है।
★ आत्मा का भोजन ज्ञान और आभूषण यज्ञ है।
★ जिन कार्यों को करने से मानव के हृदय की गति तीव्र हो जाये वह कार्य अधर्म है और जिन कार्यों के करने से हृदय की गति मन्द हो, सामान्य होती है, वह कार्य कर्त्तव्यवाद में होता है।

भारत-भूमि/आर्यावर्त्त

भारत-भूमि पर अनेक महान आत्माओं का अवतरण हुआ है। महान आत्माएँ संसार का कल्याण करने के लिए आती हैं। यह वह पवित्र भूमि है, जहाँ अपने जीवन को बनाया जाता है। यह भूमि संसार की ऊँची संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ से संसार को शिक्षा दी जाती है। यहाँ वेदों का गौरव था, वेदों की प्रभावशाली प्रथा थी, ऋषि-मुनि थे और ऐसी माताएं थी जो वेद के अनुकूल सन्तान उत्पन्न किया करती थी।

वर्तमान में यहाँ के निवासी दूसरे देश के निवासियों को देखकर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि भारतवासियों ने अपने कर्त्तव्य को त्याग दिया है। श्री रामचन्द्र व योगेश्वर कृष्ण के अतिरिक्त यहाँ अनेक महान आत्माओं ने जन्म लेकर वैदिक संस्कृति का उत्थान किया है।

आर्यावर्त्त की यह परम्परा रही है, कि जो भी जातियाँ यहाँ आती रही, उनको यहाँ समाविष्ट कर लिया गया। वे दूसरे राष्ट्रों से घृणा लेकर आए, परन्तु आर्यों ने उन्हें अपना लिया। नाग जाति, हुण जाति, क्रुक जाति आदि नामों की अनेक जातियाँ आई, वे सभी राष्ट्र में परिणित हो गई।

भारत-भूमि पर सृष्टि के आरम्भ से आर्य आते आए हैं। यहाँ परम्परा से आर्य हैं। आर्य श्रेष्ठ पुरुष होते हैं। आर्यों का जीवन संसार में परोपकार के लिए होता है। इन्होंने ही संसार में वेद के आधार पर समाज में नियम बनाए हैं।

आर्य उसको नहीं कहते जो अभिमानी बन जाए। अपनी बुद्धि से बढ़कर किसी की बुद्धि को न माने। दूसरों की निन्दा करने वालों को आर्य नहीं कहते। आर्य उसे कहते हैं जो यथार्थता का पान करने वाला हो और उस पर चलता हो। ऐसा व्यक्ति महान कहलाया जाता है और संसाार को ऊँचा बना सकता है।

द्वापर काल में महाराजा कृष्ण द्वारा इतना विज्ञान था, कि वे यन्त्र के विस्फोट से दिवस को रात्रि और रात्रि को दिवस बना देते थे। उन्होंने यह

क्रिया जयद्रथ वध कराने में अर्जुन की सहायता के लिए सम्पन्न की थी। जब देखा कि जयद्रथ तो अनेक दुर्गम किलों में बन्द हो गया है और उसकी रक्षा के लिए चहुँओर असंख्य वीर सैनिक नियुक्त कर दिए गए हैं, तो कृष्ण ने विचारा इस प्रकार तो अर्जुन को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु प्राण त्यागने पड़ेंगे। अभिमन्यु की मृत्यु का कारण जयद्रथ को मानकर अर्जुन ने यह प्रण किया था कि दूसरे दिन वह जयद्रथ को सूर्यास्त से पहले समाप्त कर देगा, यदि ऐसा न कर सका तो अग्नि में प्रवेश कर जायेगा।

महाराजा कृष्ण ने तत्काल ऐसे यन्त्र को छोड़ा, जिससे सर्वत्र अन्धेरा छा गया। युद्ध के मध्य सभी ने ऐसा जानकर कि सूर्यास्त हो गया, अब अर्जुन निजवचनानुसार अग्नि चित्ता में प्रवेश करेगा, तो कौरव दल में प्रसन्नता फैल गई तथा सभी अर्जुन को चित्ता में प्रवेश करते हुए देखने आए। जयद्रथ भी निडर होकर वहाँ आ गया। उसी क्षण देखते हैं कि अन्धेरा फट गया और पुन: सूर्य अपने स्थान पर चमकने लगा। कृष्ण ने अर्जुन को ललकार कर कहा कि अब अवसर है, मारो जयद्रथ को और इस प्रकार जयद्रथ मारा गया।

हुआ यह कि रूक्मणि देवी ने कृष्ण के इशारे पर एक ऐसा यन्त्र अपने महल से छोड़ा था कि जिससे अन्धकार टूट गया और सूर्य पुन: निज स्थान पर प्रकाशित होने लगा। उस काल में ऐसे-ऐसे यन्त्र थे, आज तो केवल अग्नि काण्ड करने वाले यन्त्र हैं, उनसे बचाव करने वाले यन्त्र नहीं हैं, जो अग्नि का शमन कर सकें। तभी तो यह कहना पड़ता है कि आज का विज्ञान तो एकाङ्गी है, इकाई में भ्रमण करने वाला है।

महाभारत काल के पश्चात् राजा परीक्षित के पुत्र राजा जन्मेजय हुए। उन्होंने एक सर्वस्व यज्ञ किया। उनके पास जितनी सम्पत्ति थी, सब यज्ञ में अर्पण कर दी। उस यज्ञ में आदि ब्राह्मणों को निमन्त्रण नहीं दिया गया। महर्षि जैमिनी ने उस यज्ञ का ब्रह्मा बनकर यज्ञ को पूर्ण कराया। पूर्ण कराकर आचार्य जी ने भविष्य की वार्त्ता उच्चारण करते हुए कहा कि आपका यज्ञ सफल नहीं होगा। महाराजा जन्मेजय अपनी पत्नी सहित वहाँ विराजमान थे।

यज्ञ की असफलता के विषय में सुनकर एक ब्राह्मण ने मग्नता मनाई। जन्मेजय ने क्रोधवश अपने वज्र से उस ब्राह्मण का कण्ठ, धड़ से अलग कर दिया। यज्ञ भ्रष्ट हो गया। ब्राह्मणों ने दक्षिणा लेने से मना कर दिया। अत: उन्हें भूमि का दान दिया गया, यहीं से जाति प्रथा प्रारम्भ हुई। जिन ब्राह्मणों

ने यज्ञ कर्म कराना त्याग दिया, उन्हें त्यागी जाति से पुकारा जाने लगा। इससे पूर्व वर्ण व्यवस्था थी।

आगे काल बीतता रहा। जब अज्ञानता आने लगी तो ब्राह्मणों ने विद्या की सूक्ष्मता कर दी। क्षत्रियों में जो वास्तविक शिक्षा थी, वह समाप्त होने लगी। वेद की विद्या लुप्त होने लगी। अपने-अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर सब अपनी मनमानी करने लगे। जब यहाँ नाना प्रकार की जातियाँ बनने लगी, तो जो जिस कार्य को करता था, उसी नाम से पुकारा जाना लगा। एक जाति दूसरी से घृणा करने लगी। मनु जी के आदेश पर चलना छोड़ दिया। राजाओं में नाना प्रकार की त्रुटियाँ आने लगी। दुराचार भी पनपना आरम्भ हो गया। देवियों की विद्या और प्रतिभा समाप्त होने लगी।

जब यहाँ सम्प्रदाय बनने लगे तो यहाँ सबसे पूर्व एक वाममार्गी सम्प्रदाय चला। इनमें इतना दुराचार था कि वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद की विद्या नष्ट कर दी। वेदों का भाष्य अनुचित कर दिया, जिससे संसार में नास्तिकता दौड़ने लगी। कुछ विद्वानों ने कह दिया यह परमात्मा, संसार में कोई पदार्थ नहीं है। यह वेद विद्या भी परमात्मा की देन नहीं है। हम वेद-विद्या को स्वीकार ही नहीं करते। वाममार्गियों के दुराचार के कारण राष्ट्र में अज्ञानता आने लगी। जब अजामेध यज्ञ करते, तो बकरी के अंग काटकर यज्ञ में डालने लगे क्योंकि अजा बकरी को भी कहते हैं। अजामेध यज्ञ इन्होंने समझा ही नहीं कि किसे कहते हैं?

जब गौ मेध यज्ञ का वर्णन आता, तो वहाँ गौ माता की आहुति देकर यज्ञशाला में अर्पण करने लगे। यहाँ ऐसा अधोगति का काल आया कि दार्शनिक और वैज्ञानिक सब तुच्छ होने लगे। वेद की विद्या लुप्त होने से संसार अधोगति को चला गया। गौ-मेध यज्ञ को समझा नहीं, कि गौ कहते हैं पृथ्वी को, और पृथ्वी की विद्या को जानना ही गौमेध यज्ञ है। गौ सूर्य की किरणों को, इन्द्रियों को और आत्मा को भी कहते हैं, विद्वानों ने इसको समझा नहीं। उन्होंने केवल यही समझा कि गौ मांस की आहुति दो, तब ही यज्ञ सफल होगा।

अज्ञानता आ जाने के कारण, आगे चलकर अश्वमेध यज्ञ होने लगे। वेद में वर्णन है कि जब राजा को अश्वमेध यज्ञ करना होता था, तो वह अपना घोड़ा कुछ सैनिकों के साथ छोड़ता था। जो उस घोड़े को रोक लेता था,

राजा उसके साथ युद्ध करता था। सभी राजाओं को विजय करने के पश्चात्, वह राजा अश्वमेध यज्ञ करने का अधिकारी समझा जाता था। ऐसी नास्तिकता आई कि वाममार्गी, अश्वमेध यज्ञ में भी, अश्व के अंगों को काटकर यज्ञ में आहुतियां देने लगे। दुराचार और भ्रष्टाचार इतना पनपा कि परमात्मा को सभी भूलने लगे।

★ जो सत्य का पालन करता है, उसके समीप सात्विक प्राणी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।
★ प्राण-शक्ति के सूक्ष्म हो जाने पर मानव रूग्ण हो जाता है।
★ हिंसा ही मानव की मृत्यु है और रक्षा ही मानव का जीवन है।
★ जब स्वार्थवाद नहीं रहता तो मानव एक-दूसरे से स्नेह करने लगता है।
★ स्वार्थवाद में ही कठोरता आती है।
★ प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए।
★ राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए रूढ़ियों का त्याग होना चाहिए।
★ परमात्मा एक है, आत्मा अनेक।
★ मन तभी पवित्र बन सकता है जब अन्न पवित्र होगा।
★ मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम साधना है।
★ अन्न-दोष से साधना नष्ट हो जाती है।
★ मन की गति स्थिर हुए बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता।
★ मस्तिष्क का सम्बन्ध अन्तःकरण के संस्कारों तथा प्रवृत्तियों से होता है।
★ आत्मा के लिए संसार रचा जाता है, रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है।
★ त्रैतवाद ही यथार्थ सिद्धान्त है।
★ सशक्त पवित्र आत्म-चेतना से पशुओं का आत्मा भी प्रभावित होता है।
★ जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु भोगों में परतन्त्र है।
★ परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनन्त है।
★ परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' है।
★ किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना सर्वथा असंगत है।

राष्ट्र निर्माण

सृष्टि के आरम्भ में करोड़ों वर्षों तक यह संसार बिना किसी राजा के चलता रहा। न कोई राजा था, न प्रजा, केवल ऋषि पत्नी और ऋषि पति। सन्तानोत्पत्ति वेद के अनुकूल होती रही। सर्वप्रथम स्वायम्भू मनु ने वेद के आधार पर राष्ट्र निर्माण किया। इससे पूर्व सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। जहाँ कर्त्तव्य का पालन किया जाता है, वहाँ त्याग और तपस्या होती है। राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता तभी होती है, जब मानव अपने कर्त्तव्य से दूर चला जाता है। धर्म का ह्रास होने लगता है। राष्ट्र के नियम धर्म की रक्षा के लिए बनाए जाते हैं। जब सभी मानव अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं, उस समय राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती।

जब मनु ने देखा कि धर्म पर आक्रमण होने लगा है, देवता कम होते जा रहे हैं तथा दैत्यों का प्रभाव अधिक बढ़ता जा रहा है, तो उन्होंने आदि ऋषियों को एकत्रित करके वेद में राष्ट्र के नियम के विषय में विचार किया। महर्षि तत्ववेत्ता ने कहा कि वेद में राष्ट्र का विधान उस समय है जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य से विहीन हो जाता है। ऋषियों की सहायता से मनु ने दैत्यों और दुराचारियों के दुराचार को नष्ट करने के लिए राष्ट्र को संगठित किया।

सर्वप्रथम उन्होंने वर्ण व्यवस्था स्थापित की। शिक्षालयों में आचार्य यह निदान किया करते थे, कि कौन ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी किस वर्ण का है? यदि कोई बुद्धिमान तथा ब्रह्म-तत्व पर उसकी बुद्धिमत्ता चलती तो उसे ब्राह्मण की उपाधि देते। जिसकी बुद्धि वाणिज्य में तेज होती उसे वैश्य तथा जो रक्षा करने वाला, अस्त्र-शस्त्र और धनुर्वेद में रूचि लेने वाला हो, उसे क्षत्रिय की उपाधि देते। जो इन तीनों में से किसी भी कार्य की विद्या न पा सके उसे शुद्र की उपाधि देते।

ऋषियों द्वारा निर्मित उपर्युक्त नियमों का पालन कराने के लिए किसी

राजा तथा राज्य के लिए किसी राजधानी की आवश्यकता अनुभव की गई, तो मनु ने सर्वप्रथम इस शरीर रूपी अयोध्या की नकल करके अयोध्या नगरी का निर्माण किया। जिसमें नौ द्वार थे।

जो मानव पाप किया करते, दुराचारी होते, उनके लिए राज्य के दूत समाचार देते। सत्-पुरूषों के लिए, ऊँची देव-कन्याओं के लिए तथा ऊँचे कर्म करने वालों के लिए राज्य का कोई प्रबन्ध नहीं होता। वे तो राष्ट्र नियम जानते हैं तथा नियम के आधार पर चलते हैं। राष्ट्र का निर्माण उन लोगों के लिए किया जाता है, जो तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं जिससे वे महान आत्माओं को तथा सच्चे व्यक्तियों को कष्ट न दे पाएँ।

राष्ट्र उसको कहते हैं जहाँ प्राणीमात्र की रक्षा की जाती हो। गौ व दूध देने वाले अन्य पशुओं की रक्षा की जाती हो। विषैले वायु को शोषण करने वाले प्राणियों की रक्षा की जाती हो। इनकी रक्षा करना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि ये प्राणीमात्र को लाभ देते हैं। एक-दूसरे से इनका सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता है जैसे मेघ और वायु का, तेज और वायु का, तेज और समुद्रों का, समुद्र और मेघों का।

जिस राष्ट्र में एक संस्कृति न हो वहाँ मानव के विचार कभी भी एकता में नहीं आ सकते। एकता के लिए एक भाषा व एक संस्कृति का होना अनिवार्य है।

राष्ट्रीयता उसी समय आती है; जब प्रजा में प्रीति तथा अपनापन होता है। जब प्रजा अन्न कहीं का ग्रहण करती है और गुणगान किसी दूसरे राष्ट्र का करती है, तो वह राष्ट्र नहीं होता। ऐसा राष्ट्र एक समय श्मशान भूमि बन जाता है।

जिस राष्ट्र में नारी अपने श्रृंगार को भ्रष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करती है, वह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। जिस राष्ट्र में माताओं और कन्याओं का श्रृंगार नष्ट किया जाता हो, ऐसा राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

जिस राष्ट्र में स्वार्थ की भावना बढ़ती चली जा रही हो तो वह स्वार्थ उसमें विष का कार्य करता चला जाएगा। दूसरों को नष्ट करने की भावना दूर करनी चाहिए। ऐसा तभी हो सकता है जब मानव में मनोबल व विचार बल हो। राष्ट्र को चाहिए कि वह बुद्धिमानों, विवेकी पुरूषों, योगियों व संयमी पुरूषों को महत्वपूर्ण पद प्रदान करें। राष्ट्र में समय-समय पर

शिक्षण-शिविर लगने चाहिए।

जिस राष्ट्र में, जिस समाज में सुरापान, मांस-भक्षण और विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट-भ्रष्ट होता चला जायेगा। जब पुत्रियों के नग्न नृत्य कराये जाते हैं, उनको ब्रह्मचारी दृष्टिपात करता है तो उसकी प्रवृत्तियाँ व इन्द्रियाँ भ्रष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। दूषित होने पर उनके हृदय में कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती। जब कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती तो अधिकार अनाधिकार भी नहीं रहता। जहाँ अधिकार-अनाधिकार नहीं रहता, वहाँ आलस्य और प्रमाद छा जाता है। आलस्य और प्रमाद आने पर मानव लक्ष्य से दूर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव-मानव के रक्त का पिपासु बनकर राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति हो जाती है।

यदि राष्ट्र में धर्म का द्रव्य नहीं, द्रव्य का उचित विभाजन नहीं, तो उससे पाप अधिक हो जायेंगे। लक्ष्मी का पति परमात्मा है। परमात्मा धर्म है। जब लक्ष्मी का पति नहीं रहेगा; तो लक्ष्मी भी चली जायेगी। तब समाज में निर्धनता आ जाती है।

राष्ट्र में एक नियम यह होना चाहिए, कि मानव को एक-दूसरे से घृणा नहीं होनी चाहिए। इस प्रभु के राष्ट्र में दूसरों से घृणा करना, अपने को उच्च मानना, मानव का दुर्भाग्य ही होता है।

राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद होता है। राष्ट्र की शान्ति राष्ट्र में यज्ञ-कर्म का होना होती है। यज्ञादि कर्मों का होना ही राष्ट्र में शान्ति मानी जाती है। राष्ट्र का भूषण राष्ट्र का चरित्र होता है। राजा के राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा। अत: राष्ट्र में चरित्र उच्च होना चाहिए।

राष्ट्र में उच्च चरित्र होने से मानव एक-दूसरे का विश्वासी होगा। एक नारी राष्ट्र के एक भाग से दूसरे भाग तक जाने पर, उसको माता, पुत्री या बहन के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से कोई न देखे, यह चरित्र है। राष्ट्र में द्रव्य का संतुलित वितरण होना चाहिए। दूसरे के अधिकार को जो मानव हनन करता है, वह भी अचरित्रवान व्यक्ति माना जाता है। अत: राष्ट्र में सर्वत्र वस्तुएँ समान विभाजित होनी चाहिए।

राष्ट्र में इस प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिए जो खाद्य और खनिज-पदार्थों के जानने वाले हो। जहाँ खाद्य और खनिज पदार्थों पर अनुसन्धान होता रहता

है, वहाँ पर पवित्रवाद होता रहता है। माता वसुन्धरा या प्रकृति के गर्भ में क्या नहीं होता? राष्ट्र में खाद्य पदार्थ अधिक होने चाहिए। ये तभी होंगे, जब अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति हों और बुद्धि के विशेषज्ञ हों। जब वे प्रकृति माता के गर्भ में अनुसन्धान करने को कटिबद्ध होते हैं तो नाना प्रकार की धातुओं और खनिजों को जानकर, उनसे नाना प्रकार के यन्त्र बनाकर, दूसरे लोकों में भ्रमण करते हैं। जब इस प्रकार के ऊँचे-ऊँचे विभाग राष्ट्र में होते हैं तो राष्ट्र में पवित्रता आ जाती है। यही वसुन्धरा की मीमांसा है। वसुन्धरा नाम माता का भी है। जो माता अपने गर्भस्थल से सुन्दर-सुन्दर पुत्रों को जन्म देती है, वह संसार में पूजनीय होती है। जब कृष्ण, कणाद और गौतम जैसे वैज्ञानिक को जन्म देती है, तो उसका गर्भाशय पवित्र होता है।

भौतिक विज्ञान से राष्ट्र का तथा आध्यात्मिक विज्ञान से चरित्र का निर्माण होता है। दोनों के रहने से राष्ट्र पवित्र बनता है तथा मानवता पवित्र बनती है। केवल भौतिक विज्ञान रहने से राष्ट्र अधूरा रह जाता है।

आत्म-विश्वासी ही राष्ट्र का नेतृत्व कर सकता है। जिसको अपनी आत्मा पर विश्वास नहीं होता, वह राष्ट्र का नेतृत्व नहीं कर सकता। राष्ट्र और आत्मा का सम्बन्ध है। आत्मा मानव का केन्द्र है। इसे जाने बिना राजा कोई कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकता। आत्म-विश्वासी बनकर दृढ़ता में पहुँचने के पश्चात् मानव की ऊर्ध्वगति बन जाती है और जीवन में व्यापकता आ जाती है। व्यापकता आ जाने पर मानव अपने जीवन को धर्मज्ञ बना लेता है।

राष्ट्र में विवेकी पुरूष होने चाहिए, जिससे विज्ञान का दुरूपयोग न हो। जब विज्ञान का सदुपयोग होता है तो राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति नहीं होती। छात्रों का चरित्र भ्रष्ट नहीं होता। छात्रों को 25 वर्ष की आयु तक अश्लील चित्रों का दर्शन नहीं करना चाहिए जिससे उनका चरित्र दूषित न हो।

चक्रवर्ती राजा वह होता है जो ऋत्विज होता है। जो अपने राष्ट्र में विभाजन तथा क्रिया पर विचार करता है जैसे—द्रव्य का विभाजन अच्छी प्रकार हुआ या नहीं तथा जहाँ के लिए विभाजन किया गया, वहाँ पहुँचा कि नहीं। सब नियमावली बनाकर राष्ट्र को सुन्दर बनाया जाता है। अपराधी को दण्ड दिया जाता है, चाहे डन्डे से दो, ज्ञान से दो या सत्संग से। किसी भी प्रकार से दण्ड देकर उसे सुन्दर बनाओ। यह सब राष्ट्र की प्रक्रिया कहलाती

है। राजा में यह भाव होना चाहिए कि यह द्रव्य मेरा नहीं, यह तो प्रजा का है। यह सोचकर वह सारा जीवन व्यतीत करेगा, तो उसका राष्ट्र अवश्य ही ऊँचा बनेगा। राष्ट्र में त्याग और तपस्या का होना बहुत अनिवार्य है। विचारों की दृढ़ता को त्याग और तपस्या कहते हैं। नाना प्रकार के प्रलोभनों में न आना, संकट आने पर सहन करना तथा उन पर विचार करना त्याग और तपस्या कहलाती है। जहाँ द्रव्य को नीचे छोड़कर चरित्र को उन्नत किया जाता है, वह राष्ट्र संसार में महान और पवित्र कहलाता है।

चक्रवर्ती राजा बनने के लिए यह आवश्यक है कि अपराधियों को दण्ड दिया जाए तथा शिक्षालयों में उपनिषदों तथा दर्शनों की शिक्षा हो। उपनिषदों में वे व्यापक विद्याएं हैं, जिनको पान करते हुए बालकों तथा माताओं के हृदयों में पवित्रवाद छा जाता है। उस पवित्रवाद से शिक्षालयों और समाज में उच्चता आती है। जहाँ चरित्रवाद और व्यापकता के उदार वाक्य ब्रह्मचारी में ओत-प्रोत किए जाते हों, उपनिषदों के अनुकूल गुरूओं का आदर करने वाले हों, वह राष्ट्र अवश्य ही ऊँचा बनेगा। ऊँची संस्कृति से ही राष्ट्र का कल्याण होता है।

यदि राष्ट्र में भिन्न-भिन्न भाषाएं हैं, तो वैदिक ब्राह्मणों को निर्धारित करते हुए प्रत्येक भाषा का गठन किया जाना चाहिए। जब इस बात पर विचार किया जायेगा कि अमुक भाषा कहाँ से आई? उसका विकास कैसे हुआ? तो यह प्रतीत होगा कि यह ऋषि-भाषा ही अपभ्रंश हो गई है। इसका कारण शिक्षा पद्धति का न होना है। बुद्धिमानों को चाहिए कि भाषा में से अशुद्धियों को दूर करके, शुद्धियों को ला करके एक संस्कृति का गठन करें। संस्कृति का गठन होने पर राष्ट्र को ऊँचा बनाया जा सकेगा।

ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों की शिक्षा का प्रबन्ध पृथक-पृथक होना चाहिए। ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा देने वाली ब्रह्मचारिणी हों, तथा ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले आचार्यजन हों। ये दोनों प्रकार के शिक्षक वानप्रस्थी होने चाहिए। वानप्रस्थी जितने ऊँचे होंगे, उतना ही ऊँचा समाज बनता चला जाएगा।

राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए। राजा को चाहिए कि जितने सम्प्रदाय हैं, उनके बुद्धिमानों का समाज एकत्रित किया जाए। उनके मौलिक तथ्यों को लेकर विचार लिए जाएं कि वे हितकर हैं या अहितकर। हितकर

विद्या का ही प्रसार किया जाना चाहिए। सम्प्रदाय कदापि नहीं रहने देने चाहिए, क्योंकि इनसे अहित ही होता है। लाभ तो केवल प्रकाश से ही होता है। राष्ट्र में धर्म और नीति जब साथ-साथ चलती हैं, तो राष्ट्र ऊँचा होता है। वर्तमान संकट को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि शासक में साहस हो, दृढ़ता हो, नम्रता हो और दण्ड देने की क्षमता हो। ज्ञान और प्रयत्न से राष्ट्र का निर्माण होता है। ज्ञान से राष्ट्र के नियम बनाए जाते हैं और प्रयत्न से उनका विभाजन किया जाता है। राष्ट्र के कर्मचारियों को इस प्रकार रहना चाहिए जैसे जल में कमल रहता है।

जहाँ महान आत्माओं को ठोकर तथा दुराचारियों को मान दिया जाता है, वह न राष्ट्र होता है न समाज। हमारी राष्ट्र की पद्धति वेद तथा दर्शन के आधार पर होनी चाहिए। मनु द्वारा निर्मित पद्धति होनी चाहिए। इससे यह आर्यावर्त धर्मज्ञ बन सकता है। मनु पद्धति लाने के लिए **अहिंसा परमो धर्मः** को अपनाना होगा। राष्ट्र में पशु, पक्षी तथा जलचर की हिंसा नहीं होनी चाहिए। उससे राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बनेंगे। राष्ट्र में बुद्धिमान, वेदाचार्य, वेदज्ञ सबका एक समाज एकत्रित होकर राजा से कहे कि राष्ट्र को ऊँचा बनाये।

ब्राह्मण समाज ऊँचा तथा तपस्या में ओतप्रोत होना चाहिए। केवल वेद के अक्षर-बोधि होने से ही किसी व्यक्ति को वेदज्ञ नहीं कहा जा सकता। वेदज्ञ वह होता है, जो वेद के पथ पर चलने वाला ब्रह्मचारी, सदाचारी हो। वेद की महिमा को अपनाता हुआ, तपस्या में परिणित होता हुआ और अपनी वाणी पर संयम करता हुआ जो भी वाक्य उच्चारण करता है, वह अशुद्धियों को नष्ट करता चला जाता है।

राष्ट्र में जब गुरूओं की पद्धति नष्ट हो जाती है, ऋषि-मुनियों के चरित्र की गाथाएं ब्रह्मचारियों से दूर चली जाती हैं तो वहाँ अनुशासन समाप्त हो जाता है और राष्ट्र पतन को प्राप्त हो जाता है। राजा का चुनाव विद्वानों के द्वारा होना चाहिए। विद्वान उसे चुने जो त्याग और तपस्या में परिणित होने वाला हो।

वेद कहता है कि सबसे प्रथम राष्ट्र के नियम बनाओ। कर्त्तव्यवाद में ही मानव को सुख प्रतीत होने लगता है। वेद का सिद्धान्त कहता है कि सार्वभौम प्रजा में सुख होना चाहिए। यह तभी हो सकेगा, जब राजा का

मस्तिष्क नवीन होगा। नवीन मस्तिष्क तभी होगा जब वह अपने चरित्र और मानवता की रक्षा करेगा। इस नवीनता का आयु से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जब मानव के मस्तिष्क की विचारधारा को नष्ट करके उसे पराधीन बनाया जाता है, तो वह व्यक्ति अधिक समय तक पराधीन नहीं रह सकता। परमात्मा ने मानव को विचार करने तथा कर्म करने के लिए स्वतन्त्र बनाया है। अत: मानव दूसरे मानव के प्रभाव में तभी तक रह सकता है, जब तक उसकी अन्तरात्मा की घृणा अपनी पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचती। जब इनका व्यापक रूप बन जाता है तो आगे चलकर, वह उसी प्राणी को निगल जाता है जिसने उसे पराधीन रखने की चेष्टा की थी।

एक मानव अन्न की कमी से क्षुधा (भूख) से पीड़ित है, क्योंकि द्रव्यपति अन्न को एकत्रित करते रहते हैं, एक समय वह आता है कि उसके सहयोगी उसकी सहायता करने लगते हैं। एक समय उनकी भावना अग्नि रूप धारण कर लेती है। क्षुधा पीड़ित व्यक्तियों की भावना, द्रव्यपति की प्रतिभा और अन्त:करण को निगल जाती है। द्रव्य के लोलुप तथा स्वार्थियों को यह सोचना चाहिए कि जब राष्ट्र और तेरे विचार में स्वतन्त्रता ही न रहेगी, तो यह द्रव्य कहाँ रह जाएगा?

राष्ट्र की उत्पत्ति धर्म की रक्षा के लिए होती है। मानवों में कर्त्तव्यहीनता के कारण ही राष्ट्र की आवश्यकता होती है। अत: धर्म और राष्ट्र पृथक-पृथक नहीं होते। पहले धर्म फिर राष्ट्र होता है। धर्म की रक्षा के लिए राष्ट्र की स्थापना की जाती है।

जब कोई सर्प की भाँति द्रव्य का स्वामी बनकर उसे (द्रव्य को) दबा लेता है, उसे धूर्त कहते हैं। जब राजा ऐसा करने लगे तो वह धूर्तों का राष्ट्र हो जाता है। राजा का क्षत्रियपन उसके कर्त्तव्य में है। जब कोई नारी अपने श्रृंगार को बेचकर उदरपूर्ति करती है, तो उसे दुराचारी राष्ट्र कहते हैं। जहाँ नारी अपने श्रृंगार की रक्षा नहीं कर सकती और मानव अपने चरित्र की रक्षा नहीं कर सकता, वह दैत्यों का राष्ट्र कहलाता है।

जब तक वैदिक परम्परा और धर्म आगे नहीं होगा, राष्ट्रवाद पीछे नहीं होगा, तब तक यह राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बनेगा। राष्ट्र में नीति सुन्दर होनी चाहिए और वह धर्म के साथ-साथ होनी चाहिए। राष्ट्र का निर्माण होकर, राजा को केवल धर्म की रक्षा के लिए चुना जाता है। जहाँ धर्म का

ह्रास किया जाता हो और मानवता न हो, उसको राजा कभी नहीं चुनना चाहिए। उसको राजा कहना बुद्धिमानों के समाज में अपराध होता है। जहाँ धर्म और मर्यादा को नष्ट किया जाए और मूर्खों के अनुकूल अपने विचारों को बनाया जाए, तो वह राष्ट्रवाद नहीं, हिंसावाद कहलाया जाता है। हिंसा उस मानव के द्वारा ही होती है, जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता।

यदि राष्ट्र से भ्रष्टाचार को समाप्त करना है तो प्रत्येक को अपना स्वार्थ त्यागकर निस्वार्थ बन जाना चाहिए। धर्म और मानवता के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर देना चाहिए। जीवन की बलि देने का यह तात्पर्य नहीं कि अपने प्राणों को ही शान्त कर दो, बल्कि यह है कि अपने अवगुणों को शुद्ध विचारों की कामनाओं के साथ वेद-रूपी ज्ञानाग्नि में भस्म कर दो। जब उनकी आहुति चली जाएगी, तो अग्नि प्रचण्ड हो जाएगी, जिसको कोई छू न सकेगा।

जिस राजा के राष्ट्र में प्रजा द्रव्य का अच्छी प्रकार सदुपयोग करती है, वह समय बड़ा कल्याणकारी होता है। ऐसे समय को सतोगुणी काल का महत्व दिया जाता है।

जब वैश्य संग्रह करने लगता है, तभी राष्ट्र की शक्तियाँ सूक्ष्म होने लगती हैं। जैसे मानव शरीर के उदर में अधिक संग्रह होने लगता है, तो एक समय वह आता है कि हृदय भी काम करना बन्द कर देता है। इन्द्रियाँ भी काम करना त्याग देती हैं, शरीर भी समाप्त हो जाता है। जैसे शरीर की चिकित्सा वैद्य करता है, उसी प्रकार राष्ट्र के उदर की चिकित्सा विद्वान ब्राह्मणों को करनी चाहिए।

राजा को विद्वानों के द्वारा नियम बनाते समय सर्वप्रथम मानव के चरित्र का विचार होना चाहिए तथा चरित्र को ऊँचा बनाने के लिए तत्पर होना चाहिए। राष्ट्र का द्वितीय अंग धर्म होना चाहिए और तृतीय अंग राष्ट्र का पालन-पोषण होना चाहिए। राष्ट्र में अजीर्ण होकर रक्तभरी क्रान्ति की उद्बुद्धता न आ जाए। राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होना चाहिए। जहाँ रूढ़िवाद होता है, वहाँ राष्ट्रीयता का विनाश होने लगता है। वहाँ मानव एक-दूसरे के साथ सहकारिता में परिणित नहीं हो पाते। इसलिए राजा को राष्ट्र से रूढ़िवाद नष्ट कर देना चाहिए।

यदि रूढ़ियाँ निपटारे में नहीं आती तो उनके आचार्यों और प्रवर्त्तकों को

ले करके उनका एक संगठित समाज बनाना चाहिए। समाज बना करके रूढ़ियों की विवेचना होनी चाहिए। उसका सभापति वेदों का विद्वान होना चाहिए, विवेकी पुरूष होना चाहिए। प्रत्येक आचार्य अपनी-अपनी रूढ़ि की चर्चा करें। सभापति उसका यथार्थ निर्णय करें। आचार्यों से निर्णय करके, उस नियम को राष्ट्र में निर्धारित किया जाए, तो रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं। रूढ़ियों के समाप्त होने पर राष्ट्र और समाज ऊँचे बन जाते हैं।

छात्र-बल में मानवता होनी चाहिए। जब छात्र-बल में क्रान्ति छाने लगती है, अज्ञानता की क्रान्ति राष्ट्र का विनाश करती है। जो क्रान्ति बुद्धिमत्ता के साथ होती है, वह बुद्धि से युक्त होने के कारण बुद्धि और सदाचार की स्थापना करती है।

राजा की योग्यताएं

राजा अपनी प्रजा को तभी अनुशासन में रख सकता है, जब वह चरित्रवान हो तथा अपने को प्रजा का सेवक समझे। तभी प्रजा उसे स्वामी स्वीकार करेगी। कोई यदि द्रव्य के बल पर राष्ट्र का स्वामी बनना चाहता है, तो असम्भव है। द्रव्य-बल, मानवता-बल, चरित्र-बल और आध्यात्मिक-बल के सामने कुछ भी नहीं है। द्रव्य बल से मनुष्य संसार में कुछ सूक्ष्म कार्य कर सकता है, बड़े कार्य नहीं।

सभा का सभापति सभा को अनुशासन में रखने के लिए बनाया जाता है, जिससे जो विषय चल रहा है, कोई व्यक्ति उससे दूर न चला जाए। राजा का चुनाव दुराचारियों को दण्ड देने के लिए होता है। यदि वह अपने राष्ट्र को अनुशासन में नहीं ला सकता, तो वह राजा कहलाने का अधिकारी नहीं। जो राजा धर्म के दस लक्षणों का अनुसरण करा है, उसके राष्ट्र में अनुशासनहीनता किसी काल में नहीं आ सकती।

यदि राजा बन जाने के पश्चात् उसकी मनोकामनाएं, उसकी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां उसके अनुशासन में नहीं रही, तो वेद कहता है कि वह राजा बनने का अधिकारी नहीं।

राज्य तथा राष्ट्र का विनाश उस काल में हो जाता है, जब राजा स्वयं अपनी मानवता पर दृष्टिपात न करके, मूर्खों के जीवन को दृष्टिपात करके राष्ट्र में नियम बनाता है। जो दूसरों को नष्ट करके राजा बनने की चेष्टा करता है, वह मातृशक्ति के शृंगार का हनन करता है। जो मूर्खों का चुना

हुआ राजा होता है, उसके लिए नियम-अनियम कुछ नहीं होते। वह राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति ला देता है। रक्तभरी क्रान्ति का मूल कारण यह है कि जितना समाज के नियमों का हनन किया जायेगा, उन्हें उनका अधिकार प्राप्त नहीं होगा, उतना ही अग्नि का प्रभाव चलता रहेगा। एक समय वह आएगा कि वे विचार जिनको दमन करने की चेष्टा की गई, वे अग्नि बनकर रक्तभरी क्रान्ति का कारण बन जाते हैं।

राजा को अपनी इन्द्रियों पर संयम होना चाहिए। संयमी मानव राष्ट्र का नायक बनना चाहिए। वह राष्ट्र को पवित्र बना देता है। राजा को स्त्री समाज के श्रृंगार की रक्षा करनी चाहिए। अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ उसके लिए बहिन, पुत्री अथवा माता के समान होनी चाहिए। इन गुणों के न होने पर यदि राजा बना दिया जाए, तो बुद्धिमान ब्राह्मणों का अपमान होने लगता है। जब राजा सदाचारी नहीं होता, तो राष्ट्र में मानवता नहीं होती। राजा का चुनाव करते समय उससे पूछा जाना चाहिए कि तू याज्ञिक है या नहीं। जो मानव यज्ञ की मीमांसा तथा प्रतिभा को जानता है, वह राजा बनना चाहिए। ऐसे राजा में त्याग और तपस्या की प्रतिभा होती है।

जिस राजा के राष्ट्र में, जिस समाज में रूढ़ियाँ होंगी और धर्म को नहीं विचारा जायेगा, धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र नहीं होगा, उस राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति आती है। रूढ़ियों से समाज पतित हो जाते हैं और राष्ट्र भ्रष्ट हो जाते हैं।

राजा को विद्वानों के द्वारा नियम बनाते समय सर्वप्रथम प्रजा का चरित्र ऊँचा बनाने का प्रयास करना चाहिए। द्वितीय अंग वैदिक धर्म का प्रचार होना चाहिए। तृतीय अंग प्रजा का अच्छी प्रकार पालन-पोषण करने का होना चाहिए।

सर्वोदय—राजा और प्रजा दोनों के समान विचार होने से ही सर्वोदय हो सकता है। यदि राजा का विचार कुछ है और प्रजा का कुछ और तथा एक समाज ऐसा है, जो सबका उदय चाहता है, तो ये तीन धाराएं राष्ट्र में नहीं चल सकती। तीनों धाराओं को सुगठित करके नियमबद्ध किया जाए तथा नियमों का पालन हो, तो उस राष्ट्र में सबका उदय हो जाता है। राष्ट्र में सर्वोदय लाने के लिए सर्वप्रथम ऐसे महान ब्राह्मण होने चाहिए, जो राजा से साहसपूर्वक उच्चारण कर सकें। उनका विचार इतना बलवान हो कि राजा

के विचारों को बाध्य कर सके। जो अपनी आत्म-उन्नति, अपनी आत्म-निष्ठा और प्रजा की निष्ठा पर लगे रहते हैं, उसके राज्य में सदा महत्ता की तरंगें ओत-प्रोत हों तथा कोई किसी का ऋणी न हो। राष्ट्र में किसी भी प्रकार की विडम्बना आने पर भी राजा अपने कर्त्तव्य को न त्यागे। उसमें स्वार्थ और पद-लोलुपता नहीं होनी चाहिए। जब इस प्रकार का राजा होगा तो प्रजा स्वयं इसी प्रकार की हो जायेगी। राष्ट्रीयता वहाँ कहलाई जाती है, जहाँ राष्ट्रीयता मानव के आत्मिक-बल पर निर्भर रहती है। राजा के याज्ञिक विचार होते हैं, जो प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक काल में प्राणि-मात्र के आनन्द के लिए विचारता रहता है।

★ संस्कारों के न रहने का कारण ही मोक्ष है।
★ सृष्टि की अवधि निश्चित है।
★ श्वास की गति को शक्तिशाली बनाने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।
★ तपस्विनी माताएँ ही महापुरुषों को जन्म देती हैं।
★ सन्तानों की प्रवृत्तियों एवं विचारों का निर्माण माता द्वारा होता है।
★ योगी के कोटि-जन्मों के संस्कार मस्तिष्क में जागृत हो जाते हैं।
★ विचार और संकल्प से नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं।
★ व्यक्ति, परिवार और समाज के उत्थान के लिए तपस्या अनिवार्य है।
★ भोगी-विलासी का जीवन क्षणिक होता है।
★ कंचन और कामिनी में अधिक लिप्त हो जाना ही मानव की मृत्यु है।
★ जो मानव अशुद्ध उच्चारण करते हैं, अगले जन्मों में परमात्मा उनसे वाणी को छीन लेते हैं।
★ जिनका इन्द्रियों पर संयम नहीं होता, वे आत्मा का हनन करते हैं।
★ परमात्मा का गुणगान गाने से हृदय में आनन्द की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं।

आर्य पुरुष के आठ गुण

'आर्य' की उपाधि उसको प्रदान की जाती है, जो श्रेष्ठ हो, सच्चा सनातन हो, परम्परा को मानने वाला हो, वैदिक विचारों तथा वैदिक ज्ञान-विज्ञान वाला हो, दुराचारी न हो। महर्षि वेदव्यास जी ने महाभारत में कहा है कि जिसमें निम्नलिखित आठ गुण हों, उसी को आर्य कहना चाहिए:—

'शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यस्यादष्टभिर्गुणौः।।'

अर्थात् जो शान्त, सहनशील, मन को वश में रखने वाला, सत्यवादी, इन्द्रियों का विजेता, दानी, दयालु और नम्र हो। वही सच्चा आर्य कहलाता है।

1. शान्त—जब मानव पर नाना प्रकार की आपत्तियाँ आ जाए, तब भी उसे शान्त रहना चाहिए। उसका शान्त स्वभाव हो। बात-बात पर झगड़ने वाला और क्रोध करने वाला नहीं होना चाहिए। जो व्यक्ति शान्त और गम्भीर न हो, उसे आर्य नहीं कह सकते। अशान्त व्यक्ति अपना उत्थान नहीं कर सकता। जिस समय मानव में आत्मिक शान्ति आ जाती है, वह समय वह उच्च बन जाता है। उसका उत्थान हो जाता है। ज्ञान मार्ग ही ऐसा है, जिसको ग्रहण करके मानव को शान्ति मिल जाती है। महापुरुष हमेशा शान्त रहते हैं। अपकारी का भी उपकार करते हैं।

2. तितिक्षु—आर्य का दूसरा गुण सहनशीलता है। जो व्यक्ति सर्दी-गर्मी, सुख-दुख, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों को सहन करने वाला हो, उसे ही सहनशील कहते हैं। प्रत्येक मानव को गणेश के समान बनना चाहिए। यदि कोई मानव कटु वचन भी उच्चारण कर जाए, तो उसको सहन कर लेना चाहिए। सहने के पश्चात् उस पर मनन करना चाहिए। जो प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहे, वही सच्चा आर्य कहलाने का अधिकारी है। मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्रजी, योगेश्वर श्रीकृष्णजी व महर्षि दयानन्दजी सच्चे आर्य थे।

3. दान्त—आर्य वह है, जिसका मन वश में हो। मन बड़ा चंचल,

हठीला और बलवान होता है। अभ्यास और वैराग्य से मन वश में किया जा सकता है। इसके बाद कुपथगामी नहीं हो सकता। अशुभ संकल्प नहीं कर सकता। मन की प्रक्रिया को जानना मानव का कर्त्तव्य है। जो मानव अपने तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर, अपने मन के प्रभाव में आकर, नाना प्रकार के मिथ्या शब्द उच्चारण करता है, वह अपने जीवन को नष्ट करता चला जाता है। इससे आत्मा का हनन होता है। मन को शरीर में घोड़े की लगाम की तरह माना जाता है। इसे आर्य अपने अनुसार चलाता है।

4. सत्यवादी—आर्य सत्यवादी होता है। मन, वचन, कर्म से सत्य बोलता है। संसार में सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। 'सत्यमेव जयते' न्यायधीश के कमरे में लिखा होता है। स्वर्ग जाने का मार्ग सत्य पर चलने से ही मिलता है। ईश्वर की जितनी रचना है, वह सब सत्य के गर्भ में निहित रहती है। यदि उसकी रचना में सत्य नहीं होगा, तो उस रचना की कोई सार्थकता नहीं होगी। निश्चय जो धर्म है, वही सत्य है, इसलिए सत्य कहने पर कहा जाता है कि धर्म कहता है और धर्म कहते हुआ कहा जाता है कि सत्य कहता है। मनुस्मृति में कहा है, "मन सत्येन शुध्यति।" और व्यासजी ने कहा है:—

"नास्ति सत्यात् परो धर्मो,
नानृतात् पातकं परम्।"

आर्य सत्यवादी, सदाचारी और विवेकी होता है।

5. जितेन्द्रिय—आर्य के वश में उसकी इन्द्रियाँ होती हैं। वह इन्द्रियों को अपने अनुकूल चलाता है और उनका शासक होता है। वह विषयों के पीछे नहीं भागता। वह जानता है कि वासनाएं कभी विषय भोगने से शान्त नहीं होती, अपितु अग्नि में घृत डालने के समान अधिक प्रदीप्त हो जाती हैं। अत: आर्य का अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार होता है।

6. दाता—आर्य वह कहलाता है जो दान करने वाला हो। वह दानशील कहलाता है। वह अन्न, धन, वस्त्र और विद्या का दान करने को तैयार रहता है। भारतवर्ष के इतिहास में अनेक कर्ण जैसे दानवीर हुए हैं।

7. दयालु—आर्य का दयालु होना भी अत्यावश्यक है। गरीबों, कमजोरों और असहाय व्यक्तियों के प्रति दया की भावना होती है, वही सच्चा आर्य कहलाता है। उसकी हृदय में करूणा की भावना बनी रहती है। आर्य की

विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति निर्बलों के रक्षण के लिए होती हैं। महर्षि दयानन्द का स्वभाव अपने विरोधियों के प्रति भी इतना विनम्र था कि विरोधी भी चकित हो जाते थे।

8. नम्र—आर्य निर्राभमानी और नम्र होता है। नम्रता ही महापुरुष की पहचान है। नम्रता में आदर और मान है। आर्य जानता है संसार के सभी पदार्थ नश्वर हैं, अत: उनसे लगाव नहीं करता। एक बार एक सज्जन ने महर्षि दयानन्द को "महर्षि" कहकर निवेदन किया तो महर्षि दयानन्द के वाक्य स्मरणीय हैं, "ऋषियों के अभाव में आप मुझे महर्षि कह रहे हो। यदि मैं कपिल, कणाद और गौतम आदि ऋषियों के समकालीन होता, तो विद्वानों में भी कठिनता से गिना जाता।" ऐसे-ऐसे महापुरुष ही वास्तविक आर्य होते हैं, जो विनम्रता और शालीलता की मूर्ति होते हैं।

जो अच्छाइयों को ला देता है, वह आर्य कहलाता है। आर्य वही है, जो प्रभु का अटूट विश्वासी हो। प्रभु के आंगन में रमण करता रहता हो तथा यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयत्न करता रहता हो। ऐसे आर्यों का एक समाज हो, जिसमें आत्म-विश्वासी और तपे हुए व्यक्ति हों। वे जो योजनाएं बनाएं, वह राष्ट्र, राजा और प्रजा के लिए महान हो। राजा के लिए उन्हें मानना अनिवार्य हो जाए। ऐसा समाज होने पर राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे हो जायेंगे।

यज्ञोपवीत और शिखा (आर्य के चिन्ह)

आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मुख्य दो आभूषण हैं—शिखा तथा यज्ञोपवीत। शिखा का स्थान इसलिए ऊँचा है, क्योंकि वह पवित्र है। वैज्ञानिकों ने इसके निचले भाग में ही ब्रह्मरन्ध्र माना है। इस ब्रह्मरन्ध्र से हमें प्रकाश मिलता है। जिनके शिखा नहीं होती, उन्हें यवन कहा जाता है। यज्ञोपवीत के तीन तार मानव के ऊपर तीन ऋणों के प्रतीक हैं—ऋषि-ऋण, मातृ-ऋण और देव-ऋण। जो इन ऋणों से उऋण होने का संकल्प करता है, वही आर्य है।

1. ऋषि-ऋण—वह पदार्थ है कि ऋषियों ने जो हमें आदेश दिया, जो हमारे लिए मर्यादा बांधी, उस मर्यादा पर चलना, उसका आदर करना और उस पर अपना जीवन बनाना, यह एक ऋण है, इससे उऋण होने का प्रयास करें।

2. देव-ऋण—देवता वे हैं, जो हमें देते हैं, लेते नहीं। वे हमें जीवन, आयु और मानवता देते हैं। इनकी पूजा करने के लिए यज्ञ करना चाहिए।

सूर्य आदि ग्रहों तक सुगन्धि पहुँचाकर हम मनोकामना के अनुकूल तेज प्राप्त करें। वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश को यज्ञ द्वारा शुद्ध करें।

3. मातृ-ऋण—जिस माता के गर्भ से हमारा जीवन बनकर हम ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं, वह माता पूजनीय है। पृथ्वी माता है, गौ माता है, संस्कृति माता है। इनका भी आदर करना चाहिए।

जिस समय यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है, तो वह यज्ञोपवीत को धारण करता है। यज्ञोपवीत परम-पवित्र कहलाता है। यज्ञों का उपवीत है। ऋणों को उतारने के लिए उपवीत का विधान किया जाता है।

परम-पवित्र का अभिप्राय यह है, कि मन-वचन-कर्म से पवित्र हो जाए। ब्रह्म-विद्या से हमारा जीवन लदा होना चाहिए। जैसे सूर्य परम-पवित्र है, प्रकाश देने वाला है, उसी प्रकार यज्ञोपवीत भी परम-प्रकाश का ज्ञान करता है। इसके तीन धागे हमें तीन ऋणों का ज्ञान कराते हैं और हमें उऋण होने के लिए प्रेरित करते हैं। यह आर्यों का भूषण है। इसका अधिकारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि आर्य बनकर सूर्य की, भाँति-वेद रूपी प्रकाश के अधिकारी बनें।

आत्मा, परमात्मा और प्रकृति इन तीनों से ही संसार का निर्माण होता है। इन तीनों के सूचक तीन धागे हैं। तीन ही प्रकार के गुण होते हैं—रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण। तीन ही प्रकार के प्राणी होते हैं—रज, तम, सत। तीन ही प्रकार की विद्याएं हैं—ज्ञान, कर्म, उपासना।

सिर के केश—सिर पर केश रखने की आर्यों में दो प्रकार की परिपाटी थी। प्रथम—जटाजूट—राजा दशरथ जटाजूट रहते थे। इस प्रकार के आर्यों का मत है कि जब परमात्मा ने हमें ऐसा बनाया है, तो हमें इसी प्रकार रहना चाहिए, यह भी एक बुद्धिमानी की परिपाटी है। इसका सम्बन्ध युद्ध से नहीं परन्तु परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान से था।

द्वितीय प्रकार के वे हैं, जो केवल शिखा का चिन्ह रखते हैं तथा यज्ञोपवीत रखते हैं। इनका मत है कि केश हमें नाना प्रकार की असुविधा देते हैं, इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। यह भी बुद्धिमानी है। जो मानव अपने सभी केश रखते हैं, उनके सारे केश ही शिखा तुल्य हैं। हमारे मस्तिष्क में सूक्ष्म-सूक्ष्म तन्तु हैं, उनकी इन केशों से रक्षा होती है। परमात्मा ने ये केश इसी प्रयोजन से दिए हैं।

घर में सर्वश्रेष्ठ कर्म
पञ्च महायज्ञ

प्रत्येक सुकर्म व शुभ कर्म यज्ञ समान माना जाता है। वास्तविक यज्ञ तो सर्वश्रेष्ठ कर्म माना ही गया है। सृष्टि के आदि से भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ ऋषियों ने किये और बतलाए हैं। महाभारत काल तक ये यज्ञ विधि-विधान से किये गये। साधारण यज्ञ, विशेष यज्ञ, देवी यज्ञ, वृष्टि यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ, अजयमेध यज्ञ, भू यज्ञ, विष्णु यज्ञ, ऋषि यज्ञ, सोमभूमि यज्ञ आदि अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते थे।

पाँच प्रकार के यज्ञों का चयन ऋषि-मुनियों ने मानवों के लिए किया है:–

(1) ब्रह्म यज्ञ
(2) देव यज्ञ
(3) अतिथि यज्ञ
(4) पितृ यज्ञ
(5) बलिवैश्वदेव यज्ञ।

यज्ञ उसी का सफल होता है, जो व्रती हो, संकल्प धारण करने वाला हो। संकल्प वही धारण कर सकता है, जो श्रद्धालु हो। श्रद्धालु वही हो सकता है, जिसका हृदय पवित्र हो। जब तक हृदय पवित्र नहीं होता, मानव में श्रद्धा नहीं होती। बिना श्रद्धा वाला व्रती नहीं बन सकता। श्रद्धा से ही संकल्प धारण किया जाता है।

सृष्टि का जब आरम्भ होता है, तो परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं, यह आत्मा यजमान बनता है, पंच महाभूत होता बनते हैं।

जो मानव रसना के स्वाद के लिए दूसरों के गर्भों (अण्डों) तथा मांस का भक्षण करता है, उसको यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। सदाचारी, चरित्रवान, संकल्पवादी, निष्ठावान और संस्कारी व्यक्ति की गति यज्ञ से ऊर्ध्व हो जाती है।

सन्ध्या (ब्रह्म-यज्ञ)

उपासक लोग जिस क्रिया में बैठकर, परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करते हैं, वह उपासना कर्म सन्ध्या कहा जाता है। जो समय दिन और रात को मिलाने वाला है, वह सन्ध्या समय होता है। दिन और रात, प्रातः और सायं दोनों समय मिलते हैं। अतः दोनों समय सन्ध्या समय कहलाते हैं।

प्राचीन काल में सब आर्य लोग गायत्री का जप करते थे। इस जप को ही सन्ध्या कर्म कहा जाता था। महाभारत काल के पश्चात्, इस पद्धति में क्रियात्मक विद्वानों के अभाव में, तरह-तरह की पद्धतियाँ बनाई गई, जिससे साधारणजन भ्रम में पड़ गए।

यह आर्यजनों का सौभाग्य है कि महर्षि दयानन्द ने जप (गायत्री) से पूर्ववर्ती क्रियाएं, सन्ध्या में वर्णन की। जैसे आचमन, अंग-स्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अधमर्षण, मनसा-परिक्रमा, उपस्थान आदि के मन्त्र सन्ध्या में वर्णित किये। इन सब अंगों के समुदाय का नाम सन्ध्या है। जिसमें जप प्रधान कर्म है और आचमन आदि अंग कर्म हैं। इन अंग कर्मों को विधिवत् करने के पश्चात् ही जप किया जाता था, शुष्क जप नहीं।

गायत्री जप से पूर्व अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को पूर्ण शान्त करके, जप करने की विधि महर्षि दयानन्द की कृपा से हमें पुनः प्राप्त हुई है। आचमन से शरीर, इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन से इन्द्रियाँ, प्राणायाम से मन, अधमर्षण से बुद्धि, मनसा परिक्रमा से चित्त, उपस्थान से अहंकार के मन्त्र ऋषि ने क्रमशः दिये हैं। इसके पश्चात् ही परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना में, अपनी आत्मा और मन को जोड़ें।

1. शरीर—पहले स्नान से शरीर की बाह्य-शुद्धि करें, इसके पश्चात् राग-द्वेष, असत्य भाषण के त्याग के विचार से भीतर की शुद्धि करनी चाहिए। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य से शरीर को स्वस्थ करके ही ऐसा सम्भव है। मनुस्मृति का निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है:—

"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्याम भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।"

अर्थात्—शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

2. आचमन—मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करने चाहिए। जल से आचमन करने से गले की कफ आदि की निवृत्ति होती है। इससे संस्कार ग्रहण करने की योग्यता पैदा हो जाती है। दक्षिण हाथ में जल लेकर बाह्य-तीर्थ से आचमन करना चाहिए। आचमन करने का यह भी कारण है कि जल पवित्र होता है। पवित्र होकर अगला कर्म करें।

इन्द्रिय स्पर्श—जीवात्मा इन्द्रियों के व्यापार में निरन्तर लगा रहता है। सन्ध्या में इन्द्रियाँ बाधक न हों, अत: इन्द्रियों का स्पर्श किया जाता है। मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से जल-स्पर्श करके प्रथम दायें और फिर बाएं, मन्त्रों से स्पर्श करना चाहिए। स्पर्श करते हुए इन्द्रियों को आयु पर्यन्त बलशाली व शक्तियुक्त बनाने की परमात्मा से प्रार्थना करें।

मार्जन—मन की पवित्रता से इन्द्रियों की पवित्रता होती है और मन के अपवित्र होने से सब इन्द्रियाँ कुमार्ग में प्रवृत्त होती हैं। अत: मार्जन द्वारा जल के छींटे देता हुआ—शिर, दोनों नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, दोनों पैरों, पुन: मस्तक पर और इसके पश्चात् सभी अंगों पर जल छिड़कता हुआ, इन्हें पवित्र रखने की परमात्मा से प्रार्थना करें।

3. प्राणायाम मन्त्र—इससे मन स्थिर किया जा सकता है। जब मनुष्य प्राणायाम करता है, तब प्रतिक्षण अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो, तब तक आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

"दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।" (मनुस्मृति)

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं, वैसे ही प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राण के निरोध का नाम प्राणायाम है।

प्राणों के साथ सम्पर्क होने पर यह आत्मा जीवात्मा कहलाता है। जब तक जीवात्मा का प्राण के साथ सम्बन्ध है, तब तक प्रभु के शासन से बाहर नहीं रह सकता। प्राण का सम्बन्ध परमात्मा ने किया है, यह प्राण जीवात्मा को जन्म-जन्मान्तर में लिए डोलता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाने वाला यह प्राण ही है। मुक्ति होने की अवस्था में ही जीव का प्राण से सम्बन्ध-विच्छेद होता है। प्राणों से सम्बन्ध-विच्छेद का उपाय, प्रभु की

प्रार्थना है। यह प्राण प्रार्थना करने की अवधि है। जब तक मोक्ष नहीं हो जाता, यह जीवात्मा के साथ जुड़ा रहता है। मृत्यु के समय, इसी प्राण के साथ, जीवात्मा एक शरीर से निकलकर दूसरे में जाता है।

योग दर्शन कहता है—**"ततः क्षीयते प्रकाशावरणाम्"** प्राणायाम के अनुष्ठान से प्रकाश-आत्म साक्षात्कार रूप विवेक ज्ञान का आवरण (परदा) शिथिल हो जाता है। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति की आयु चार सौ वर्षों तक हो सकती है। **'प्राणो वै भूतानामायुः'** वर्षों की संख्या पर आयु निर्भर नहीं है। यह जो प्राण शक्ति है, इसको चाहे अल्पकाल में व्यय कर ले, चाहे दीर्घकाल में। द्रोणाचार्य की आयु 400 वर्ष और महर्षि व्यास की आयु, महाभारत युद्ध के समय 160 वर्ष की थी।

प्राणायाम में उपयोगी सावधानियाँ:—

1. नासिका से ही साँस लेने का अभ्यास करना चाहिए।
2. सोते समय मुँह खोलकर सोना चाहिए।
3. आहार-विहार ठीक रखना चाहिए और निश्चित समय पर भोजन करना चाहिए।
4. मन शुद्ध हो, यह धर्म से कमाए, अच्छे शुद्ध भोजन से ही सम्भव है, क्योंकि अन्न से मन बनता है।
5. प्राणायाम शुद्ध और शान्त स्थान पर करना चाहिए।
6. सोना व जागना ठीक निश्चित समय पर होना चाहिए।
7. यम व नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक है।
8. गहरा श्वास लेने का अभ्यास डालना चाहिए।
9. क्रोध त्याग देना चाहिए।
10. रक्तशुद्धि की ओर ध्यान देना चाहिए। अशुद्ध रक्त से विचार अच्छे नहीं बनते।

प्राणायाम के लाभ

1. आयु की वृद्धि होती है।
2. शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है।
3. बुरी मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।
4. प्राण वश में होने से इन्द्रियाँ और मन भी वश में हो जाते हैं।
5. शरीर में सब धातुओं की पुष्टि हो जाती है।

6. स्मृति शक्ति बढ़ जाती है, पाठ शीघ्र कण्ठस्थ हो जाता है और सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय भी सरलता से समझ में आ जाता है।

प्राण की साधना

"यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेत वश्य शनै शनै।
तथेव वश्यते वायु, अन्यथा हन्ति साधकम्।।"

अर्थात् जैसे जंगली पशुओं को धीरे-धीरे सधाया जाता है, वैसे ही प्राण को धीरे-धीरे साधना चाहिए, नहीं तो हानिकारक हो सकता है।

अधमर्षण मन्त्र—बुद्धि को पाप से दूर रहने का मन्त्र है। परमात्मा केवल सृष्टि बनाकर नहीं छोड़ देता। इन मन्त्रों में सृष्टि कैसे और क्यों बनी? इस सृष्टि में रहने के नियम क्या हैं? मैं इसमें क्यों आया? इससे छूटने के क्या उपाय हैं? परमात्मा सृष्टि को बनाने के साथ-साथ नियम-शास्त्र वेद को भी बनाता है। वेद को बनाया और साथ-साथ प्रकृति को कार्यरूप में परिणित किया है। दोनों को साथ-साथ बनाया है।

उसी प्रभु के सामर्थ्य से प्रलय होती है और सृष्टि भी होती है। दिन-रात बनने के साधन सूर्य और चन्द्र हैं। ब्रह्माण्ड को पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तीन भागों में बाँटा है। उसके बाद लोक-लोकान्तरों का निर्माण, इनके भीतर किया है।

जीवों के कर्मों के अनुसार, उनके (जीवों के) शरीरों की रचना प्रभु करता है।

आगे होने वाले पापों से बचाने के लिए अधमर्षण मन्त्र हैं। जो पाप हो चुके, वे तो अवश्य भोगने पड़ेंगे।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"

अधमर्षण का अर्थ है, पाप से डरकर, पाप से दूर रहना।

प्रभुभक्ति से सब कुछ मिल सकता है, लोभ में पड़कर क्यों पाप करता है? डर उस नियन्ता से, प्रार्थना कर उस दाता से और सब कुछ उसी से प्राप्त कर।

बुद्धि को समझाओ, यही उपाय पाप से निवृत्ति का है। जब समझ में आ जाता है, कि इन पाप कर्मों में कुछ नहीं रखा है, तब बुद्धि स्वयं पाप कर्म से, जीवात्मा को हटाती है।

5. मनसा परिक्रमा मन्त्र—महर्षि दयानन्द जी ने चित्त को सुव्यवस्थित

करने के लिए, छः दिशाओं के लिए छः वेद-मन्त्र दिये हैं। इन मन्त्रों में सूर्य को आधार मानकर दिशा नहीं हैं, अपितु जिधर भी अपना मुख हो, वह प्राची दिशा है। प्राची का अर्थ है, सामने। प्रतीची का अर्थ पीछे, दक्षिण का दाहिनी ओर, उदीची का बाईं ओर, ध्रुवा का नीचे की ओर और ऊर्ध्वा का ऊपर की ओर है।

सन्ध्या में दिशा का नियम नहीं

जिधर से वायु आ रही हो, उस ओर मुख करके बैठना चाहिए, चाहे वह पूर्व दिशा हो या अन्य दिशा। ऋषि का लेख है कि:—

"शुद्ध देश, पवित्रासन पर, जिधर की ओर का वायु हो, उधर को मुख करके....." (संस्कार विधि)

ऋषि ने लिखा है कि:—

"यत्र स्वस्य मुखं सा प्राची दिक्"—(पंचमहायज्ञविधि)

अगला वाक्य यह भी लिखा है कि:—

"तथा यस्यां सूर्य उदेति सापि प्राची दिगस्ति"

अर्थात् जिस ओर सूर्य उदय होता है, वह भी प्राची दिशा है। मनसा परिक्रमा के मन्त्रों में अधिपति, रक्षिता और इषु हैं।

अधिपति—स्वामी-परमात्मा के छहों मन्त्रों में, 6 दिशाओं में, एक-एक गुण का वर्णन किया गया है।

वह परमात्मा (1) अग्नि अर्थात् ज्ञानस्वरूप, (2) इन्द्र-परमैश्वर्ययुक्त, (3) वरूण-सर्वोत्तम, (4) सोम-सर्व जगत उत्पादक और शान्ति आदि गुणों से युक्त, (5) विष्णु-सर्वव्यापक, (6) बृहस्पति-वाणी, वेदशास्त्र और आकाश आदि का पति है।

रक्षिता—असित, तिरश्चिराजि, पृदाकु, स्वज, कल्माषग्रीव और श्वित्र है। इनमें तीन ईश्वर के गुण हैं—असित, स्वज, श्वित्र। इनमें तीन ईश्वर के रचे पदार्थों के गुण हैं—तिरश्चिराजि, पृदाकु, कल्माषग्रीव।

ये 6 हमारी रक्षा करते हैं:—

इषु-इषवः—श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के दण्ड देने के साधन।

(1) आदित्याः—प्राण और किरण, (2) पितरः—ज्ञानी लोग, (3) अन्नम्—पृथ्वी आदि पदार्थ, (4) अशनिः—विद्युत, (5) वीरूधः—वृक्ष, लताएं, (6) वर्षम्-वर्षा।

किसी भी दिशा में, किसी भी मन्त्र को समझकर, परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, चित्त को शान्त करें।

आत्मा का मुख्य निवास स्थान मस्तिष्क है। यह सामान्य अवस्था में नीचे के हृदय में और विशेष अवस्था में मस्तिष्क में रहता है। उसके पास ही उसके सदा साथ रहने वाला अन्तःकरण तत्त्व है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, उसी अन्तःकरण की चार अवस्थाएं हैं। मन के भी दो भेद हैं—(1) दैव, (2) यक्ष। इनमें से दैव का ज्ञानेन्द्रियों पर और यक्ष का कर्मेन्द्रियों पर अधिकार होता है। अन्तःकरण की निश्चयरूप वृत्ति का नाम बुद्धि, अनिर्णीत अवस्था का नाम मन होता है। किसी विषय का निर्णय करने के लिए मस्तिष्क पर ही विशेष बल देना पड़ता है, अतः अन्तःकरण का प्रधान केन्द्र भी मस्तिष्क में ही मानना पड़ता है।

चित्त—सत्व, रजस व तमस के मेल से बनी हुई एक वस्तुविशेष चित्त होता है। यह सृष्टि के आरम्भ में प्रत्येक जीवात्मा को एक बार मिल जाता है, वही जन्म-जन्मान्तर में सदा साथ रहता है। यह महाप्रलय में नष्ट होता है या मध्य में मुक्ति होने पर। यह चित्त ज्ञान तन्तुओं का समूहरूप मस्तिष्क का कोई एक भाग नहीं है। यदि ऐसा होता, तो शरीर के जलने पर, वह भी जल जाता, परन्तु यह जीवात्मा के साथ जन्मान्तर में भी जाता है।

इस चित्ततत्त्व में सब जन्मों के व सब कर्मों के फल जमा रहते हैं। मुक्ति न होने पर, प्रलय के समय, सबके संस्कार, परमात्मा के ज्ञान में संगृहीत रहते हैं, सृष्टि के पुनः होने पर प्रत्येक जीव को उसके, चित्त के संस्कार दे दिये जाते हैं। मनसा-परिक्रमा के मन्त्रों में, सभी दिशाओं में, प्रभु की महिमा का वर्णन किया गया है। चित्त के अन्दर स्थित प्रतिकूल संस्कारों को दबाकर, प्रभु के गुणों को देखते हुए, अनुकूल व अच्छे गुण, जागृत करने चाहिए।

6. उपस्थान मन्त्र—अन्तःकरण की चौथी अवस्था, मन, बुद्धि और चित्त के पश्चात् अहंकार अथवा धृतिसंज्ञक कहलाती है। उपस्थान मन्त्र इसी विषय में है।

यह अहंकार संज्ञक तत्त्व आत्मा के अत्यन्त निकट है। जब मन, बुद्धि और चित्त अपना कार्य बन्द कर देते हैं, उस समय सुषुप्ति अवस्था में भी तीन कार्य करता है—(1) प्राणों का नियन्त्रण, (2) जठर में पाकक्रिया,

(3) रक्त संचार। यह चित्त के समान संस्कारों का केन्द्र नहीं है। यह पूर्ण स्वच्छ है, इसमें आत्मा का प्रकाश पड़ता है।

इस तत्त्व की पहचान यह है कि जब हम रात में यह कहकर सोयें कि चार बजे उठना है, तब गहरी निद्रा में होने पर भी, किसी के द्वारा ठीक चार बजे जगा दिये जाते हैं। यह काम न मन का, न बुद्धि का और न चित्त का ही है, क्योंकि सोने की अवस्था में, ये तीनों अपना कार्य बन्द कर देते हैं। अहंकार तत्त्व ऐसा है, जो जागता रहता है और ठीक चार बजे उठा देता है।

इस धृतिसंज्ञक तत्त्व अथवा अहंकार में भी रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण, तीनों गुण हैं। सतोगुण के बढ़ने पर, जीवात्मा इस तत्त्व में, परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

संसार में एक उपासक जीवात्मा है और दूसरा उपास्य देव भगवान है। इस दो के अतिरिक्त कोई तीसरा चेतन पदार्थ संसार में नहीं है जिसकी उपासना की जाए। सूर्यादि सब जड़ पदार्थ हैं, जड़ की उपासना करना मूर्खता है।

जब तक जीवात्मा और परमात्मा के बीच में अविद्यान्धकार वासना आदि की दीवार विद्यमान है, तब तक न जीवात्मा अपने को जान सकता है और न परमात्मा को जानने की शक्ति जीवात्मा में आ सकती है। जब ये बीच के बन्धन समाप्त हो जायेंगे, तो परमात्मा के मिलने में कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता, प्रत्युत वासनाओं को दूर करने में परिश्रम करना पड़ता है।

जो अधिक योग्य होता है, वह कम योग्यता वाले पर शासन करता है। कम योग्यता वाले को अपने से अधिक योग्य के शासन की आवश्यकता होती है। परमात्मा, जीवात्मा और जड़ जगत से महिमा में अधिक है। महिमा के कारण परमात्मा जगत का स्वामी है। जीवात्मा और प्रकृति को उसने बनाया नहीं है। स्वामी होने में महिमा कारण है न कि अंशांशी भाव।

समस्त ब्रह्माण्ड का एक ही स्वामी है। यह विचार नहीं करना चाहिए कि इस परमात्मा को छोड़कर किसी अन्य के आश्रय से तर जायेगा या मरकर परमात्मा से पिण्ड छूट जायेगा। न तो इस जीवन में कोई दूसरा सहारा है और न मरने के बाद ही किसी दूसरे प्रभु के आश्रय की आशा है। जैसा यह जीवन, वैसा ही अगला। अतः क्यों समय खोता है? परमात्मा की उपासना कर।

यह विचार नितान्त असत्य है कि परमात्मा के बिना अन्य कोई देव कुछ

भला कर सकेगा। सब देव जड़ हैं, उनमें से किसी में भी कुछ भी करने की शक्ति नहीं। जड़ देव किसी का कुछ भी नहीं कर सकते। स्वामी होना तो अलग रहा। चेतन देव केवल परमात्मा है, जो समस्त चराचर जगत का स्वामी है। उसी की उपासना फलदायक है।

परमात्मा सर्वव्यापक और महासामर्थ्यवान है। अत: वह पिता, विधाता व प्रजापति कहलाता है। जितना तेरा सामर्थ्य है, उतना पुरूषार्थ कर ले। तेरे पुरूषार्थों को देखकर, परमात्मा तेरी नौका पार करने वाले बनेंगे। यदि अपनी शक्ति भर यत्न करेंगे, तो प्रभु हमारे सहायक बनेंगे।

वेद ने कहा है—**"न ऋृते श्रान्तस्य सख्याय देवा"** अर्थात् जो व्यक्ति अपना सारा प्रयास करके थक जाता है और फिर परमात्मा की ओर देखता है, तब प्रभु सहायता करते हैं। ज्ञानवान का कर्म बन्धन टूट जाता है।

संसार में तीन वस्तुएँ नियम और अनादि हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। इनमें जीवात्मा भोगने वाला है, चाहे प्रकृति के सुख-दु:खों को भोगे या परमात्मा का आनन्द लेवे। जैसे प्रकाश की ओर मुख करने वाले की परछाई पीछे चली जाती है और प्रकाश की ओर पीठ करने पर परछाई सामने आ जाती है। इसी प्रकार परमात्मा की ओर पीठ करने से अर्थात् उससे विमुख होने से सम्पूर्ण अविद्यान्धकार सामने रहता है। अत: प्रभु की ओर मुख करके बैठो, जिससे तम (अज्ञान) पीछे चला जाये। यह प्रकृति तम: है, इसके भोग तम: हैं, सारे जीवन इनको भोगा है, इनकी नीरसता का ज्ञान हो गया तो परमात्मा की ओर मुख करना है, उसी का सहारा लेकर जीवन सफल बनाना है।

प्रकृति सत् है, जीवात्मा सत्, चित है और परमात्मा सत्, चित, आनन्द है। प्रकृति की अपेक्षा जीवात्मा में चित अधिक है, अत: उसकी उपासना नहीं करनी चाहिए। परन्तु जीवात्मा में आनन्द नहीं है और वह आनन्द परमात्मा में है। उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपासना करके, उसके निकट जाना चाहिए।

देव यज्ञ

ब्रह्म यज्ञ के पश्चात् आचार्यों ने, इस सृष्टि के प्रारम्भ में, आत्म पिपासा को शान्त करने के लिए, अन्तर्हृदय में जो यज्ञ हो रहा है, उस यज्ञ को बाह्म

जगत में लाने का प्रयास किया, इस यज्ञ को देव यज्ञ कहा। देवताओं का पूजन करना हमारा कर्त्तव्य है। वैदिक साहित्य में दो प्रकार के देवताओं का वर्णन आता है। एक पूजा वह है जिसको जड़ पूजा कहते हैं और दूसरे चेतन देवता माने गये हैं। दोनों प्रकार के देवताओं के पूजन के लिए हमारा गम्भीर मनन और चिन्तन होना चाहिए। वेद का वाक्य कहता है कि अग्नि देवताओं के रूप में परिणित रहती है, क्योंकि यह प्रत्येक परमाणु का विभाजन करती रहती है। कोई भी परमाणु हो, कोई भी तरंग हो, उनका विभाजन करना इस अग्नि का कर्त्तव्य है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी सभी में विभक्त क्रियाएं हो रही हैं। देवपूजा में, अग्नि में जो साकल्य (सामग्री) प्रदान किया जाता है, उसे अग्नि विभक्त करके, सभी महाभूतों के पास पहुँचा देता है। प्रकृति और परमात्मा को माँ, काली, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, वैष्णवी आदि अनेक नामों से पुकारा गया है। प्रकृति से ही हमें अन्न, धन आदि मिलता है। इसकी शुद्धि के लिए यज्ञ (हवन) करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। विचारों की और मल-मूत्र की दुर्गन्धि, यज्ञों से ही दूर हो सकती है। यज्ञ के साथ-साथ वेद का पठन-पाठन आवश्यक है। इससे वेद के पवित्र ज्ञान-विज्ञान की रक्षा होती है। जब अपनी वाणी के द्वारा उद्गीत गाते हुए, अग्नि में सामग्री डालते हैं, तो शब्द द्यौ में प्रवेश कर जाते हैं। पंच महाभूत पवित्र होते रहते हैं। आचार्यों ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना है। अत: प्रत्येक गृह में वेद-ध्वनि होनी चाहिए।

चेतन जगत में मानव, पशु, पक्षी, कीट व पतंग, जलचर, थलचर व नभचर सभी प्राणी आते हैं। देवपूजा से वातावरण शुद्ध होकर सभी प्रसन्न होते हैं। परमात्मा का चिन्तन करना, उसके गुणों को अपने में धारण करने का नाम भी एक यज्ञ माना गया है।

अतिथि यज्ञ

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि, परमात्मा को अतिथि के रूप में स्वीकार करते रहे हैं। जब हम प्रभु को अपने में यह मानते हैं कि हम एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। याज्ञिक पुरूषों ने भी उस परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में माना है। गृह में जब एक बुद्धिमान अतिथि आता है तो वह गृह को

अपने गुणों से ऊँचा बनाता है। गृह-स्वामी और गृह-स्वामिनी प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार परमात्मा को सर्वव्यापी मानकर, उसे अतिथि के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्यों ने नाना प्रकार के यागों में अतिथि याग की प्रशंसा की है।

अतिथि का अभिप्राय यह होता है कि कोई भी बुद्धिमान विद्वान, जिसकी कोई भी तिथि निश्चित न हो, वह हमारे गृह में प्रवेश करता है, हमें ऊँचा उपदेश देता है, ऊर्ध्वा में हमें गमन कराता है तो वह हमारा अतिथि कहलाता है। जब माता के गर्भस्थल से एक बालक का जन्म होता है, तो वह भी एक अतिथि के रूप में माना गया है। छोटा-सा बालक अपने भावों को तो व्यक्त नहीं कर सकता, परन्तु उसके आने से जो प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार विद्वान अतिथि के गृह में आने से प्रसन्नता का स्रोत बहने लगता है। अतिथि वह कहलाता है जो आध्यात्मिक अथवा परा विद्या का उपदेश देने वाला हो।

उचित आसन देना, उचित भोजन कराना, आदर-सत्कार करना व अतिथि का स्वागत करना गृह-स्वामी का कर्त्तव्य माना गया है। साधारण मानव भी यदि गृह में आता है तो तीन बातें उससे पूछनी अथवा कहनी चाहिए—आओ, बैठो व पानी पीओ। क्योंकि ये तीनों मोल नहीं लानी पड़ती।

गृह-स्वामी कहे—हे अतिथि! आ, तू मेरे गृह के साकल्यों (पदार्थों) का पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दे। पुण्यवान गृहों में ही अतिथि आते रहते हैं। जो बुद्धिमान तपस्वी होता है, वह गृह में अतिथि बन कर आता है। वह अपने पुण्यों को गृह में त्याग देता है। जिन गृहों में महापुरूष आते रहें, उनकी तरंगें होती रहें, अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्यागते रहें, वह गृह सौभाग्यशाली होते हैं। वह अतिथि अपने पुण्यों को गृह में त्यागकर यजमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है। हृदय में प्रसन्नता को युक्त कर देता है, वह अतिथि-यज्ञ कहलाता है।

पितृ यज्ञ

प्रत्येक मानव के समीप, परमात्मा की आभा निहित रहती है, अत: वह परमपिता परमात्मा सबका पितर है। वह सर्वत्र स्वयं विद्यमान है। जब हम अणु और परमाणु के क्षेत्र में जाते हैं, तो उनके मूल में परमात्मा ही दृष्टिपात आता है। पितर वह होता है, जो रक्षा करने वाला हो और जो हमें देता हो।

परमात्मा ने मानव शरीर का निर्माण इस प्रकार किया है कि सारे ब्रह्माण्ड को इससे कटिबद्ध कर दिया है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड पितर के रूप में विद्यमान है। किसी न किसी रूप में पितरों का क्रिया-कलाप करता रहता है। वह रक्षक कहलाता है। परमपिता परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड अपनी क्रियाओं में रत हो जाता है।

माता-पिता भी पितर कहलाते हैं। माता केवल अन्न से ही रक्षा नहीं करती, अपितु विचारों की भी रक्षा करती है। आकाश, अग्नि, वायु, जल व पृथ्वी भी हमारे पितर हैं। पितृ यज्ञ का अभिप्राय यह है, कि यथोचित इनको अपने हृदय में समाहित करके हमें इनका पूजन करना है। पूजन का अभिप्राय यह है, जिस रूप में जो है, उसी रूप में हम नम्रता से उसको उपयोग में लाएं।

विद्वान, आचार्य, पुरोहितजन, महापुरुष, राजा, माता-पिता व गुरू सभी पितर माने जाते हैं। उनका पूजन करना व उनकी इच्छाओं की पूर्ति करना, उनकी पूजा कहलाई जाती है। जब उनकी सेवा की जाती है, उनका आदर किया जाता है, तो यह पितृ यज्ञ कहलाता है। पितृ का अभिप्राय यह है कि जिससे हमारी रक्षा होती हो।

जितने पितर हैं, सब एक-दूसरे में गुथे हुए हैं। इन पितरों की उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है।

बलिवैश्वदेव यज्ञ

जो मानव पाँचों यागों में संलग्न होने वाला है, जो इनमें अपनी वृत्तियों को अर्पित कर देता है, वह पंचीकरण वाला कहलाता है। यह पंचीकरण पाँच यज्ञों वाला भी है और पाँच महाभूतों वाला भी है। पाँच प्रकार के यज्ञों में जो मानव अपने जीवन को अर्पित कर देता है, जैसे-ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, अतिथि यज्ञ, पितृ यज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ, वह मानव मोक्ष तक पहुँच जाता है।

बलिवैश्वदेव का अभिप्राय है कि जितने भी प्राणी जलचर, थलचर व नभचर हैं, इनके ऊपर विचार विनिमय करता है अथवा इनको भोजन देता है, वह बलिवैश्व यज्ञ करने वाला है। इन्हीं यज्ञों से साम्यवाद की प्रवृत्ति का विकास होता है। जहाँ सब प्राणियों का भाग मानव उन्हें प्राप्त कराता

है, वह बलिवैश्व यज्ञ करने वाला है।

वास्तव में तो परमात्मा संसार का नियन्ता है और सभी जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार शरीर (योनि) देता है और वही सबको उसी प्रकार का भोजन प्रदान करता है। सब प्राणी एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं। हमारा आहार-व्यवहार इतना पवित्र होना चाहिए, जिससे प्रभु की रचाई हुई, जो अनुपम माला है, वह माला सूत्र में पिरोई रहनी चाहिए।

बलिवैश्व वह है जो भोग योनि के प्राणियों के लिए भोजन व सुगन्धि दिया जाता है। मानव योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है, अत: मानवों का कर्त्तव्य है, कि दूसरे प्राणियों के जीवन को सहायता दे। परन्तु अद्‌भुत व विचित्र समय चल रहा है, अधिकतर मानवों का आहार अशुद्ध हो गया है। वह भोग योनियों के प्राणियों को भोजन देने के स्थान पर, स्वयं ही उन्हें अपना भोजन बना रहा है। हिंसक प्राणियों का भोजन मानव करने लगा है। दूसरी योनियों के गर्भों (अण्डों) को भी रसना के स्वाद में, चट कर रहा है। यह नहीं समझ रहा कि अगले जीवन में स्वयं इनका भोजन बनना होगा।

मानव को पाँचों यज्ञों करते हुए, अपने जीवन को प्रकाश की ओर ले जाना चाहिए। मानव जीवन पूर्व के जन्म में किये शुभ कर्मों का फल है। इस जन्म को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

★ जीवन-मुक्त प्राणियों को पाप और पुण्य दोनों नहीं व्यापते।
★ मन विभाजन करने वाला तथा प्राण विभाजित होने वाला है।
★ वेद का ज्ञान सब लोक-लोकान्तरों में है और सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है।
★ वेद का प्रत्येक मन्त्र तथा उसका शब्दार्थ 'ओ३म्' से बिन्धा है।
★ वेद ज्ञान आर्ष है, अमर है।
★ सारी भाषाओं का मूल वैदिक भाषा है।
★ वेदों की रचना मानव नहीं कर सकता। वेद ईश्वरीय वाणी है।

गायत्री-मन्त्र

गायत्री मन्त्र के अनेक नाम

1. गायत्री—गायत्री छन्द में होने के कारण, इसको गायत्री कहते हैं।

2. सावित्री—इस मन्त्र का देवता सविता है, अत: इस मन्त्र को सावित्री कहते हैं।

3. गुरूमन्त्र—वेदारम्भ संस्कार में गुरू अपने शिष्य को इस मन्त्र का उपदेश करता है, अत: इस मन्त्र को गुरूमन्त्र भी कहते हैं।

4. वेदमाता—गायत्री मन्त्र को अथर्ववेद में वेदमाता नाम से कहा गया है। '**स्तुता मया वरदा वेदमाता......**' इत्यादि।

5. मन्त्रराज—सब मन्त्रों में यह सर्वश्रेष्ठ है, अत: इसको 'मन्त्रराज' नाम भी दिया गया है।

6. वेदमुख—गायत्री मन्त्र वेदों में मुख्य मन्त्र है, अत: इसको 'वेदमुख' भी कहते हैं।

7. कामधेनु—गायत्री मन्त्र से सब इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं, जैसा कि महर्षि दयानन्द जी ने इसके जप का फल स्वयं लिखा है कि—

"हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादि—कर्मणा
धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।"

अत: इस मन्त्र का नाम कामधेनु भी है।

गायत्री मन्त्र का वर्णन चारों वेदों में आता है।

"यथा च मधु पुष्पेभ्यो, घृतं दुग्धात्, रसात् पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते।।"

(वृहद् योगीयाज्ञवल्क्य 4/16)

अर्थात् जैसे पुष्पों का सार शहद है, दूध का सार घृत है और रस का सार दूध है, वैसे ही सब वेदों का सार गायत्री है।

गायत्री मन्त्र

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजुर्वेद 36/3)

'ओ३म्' परमात्मा का मुख्य एवं निज नाम है। यह नाम आदि सृष्टि से अब तक चला आ रहा है। आदि सृष्टि में उत्पन्न आर्य ही आबादी बढ़ने के कारण दूर-दूर देशों में अर्थात् देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में बसे हुए हैं। समस्त पृथ्वी लोक पर रहने वाली मानव जाति एक है। इस पर नाना जाति कल्पना करना पश्चिमी देशों के मानवों की मूर्खता और धूर्तता दोनों हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में सभी ऋषि-मुनि उत्पन्न हुए क्योंकि सतयुग का काल था। ये आर्य लोग विभिन्न देशों में जा बसे। बाहर जाकर नाना मत वाले बने। सारे संसार में सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत काल तक सभी आर्य थे। यह 'ओ३म्' नाम सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा। ईसा और मूसा के मानने वाले, ईसाई और मुसलमानों की प्रार्थना में अन्त में 'आमीन' शब्द है। तिब्बत, चीन आदि देशों के बौद्धों का परम पवित्र मन्त्र 'ओं मनी पदमो होम' अर्थात् 'ओ३म्' किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इससे सिद्ध होता है कि सब सम्प्रदायों और समस्त मानवों का मूल-स्रोत एक है। सब वैदिक धर्म से पृथक हुए हैं, ये लोग आदि में 'ओ३म्' कहना भूलकर, अन्त में ही कहते हैं।

'तस्य वाचकः प्रणवः' (योगदर्शन 1/27)

अर्थात् उसका बोधक प्रणव-ओ३म् है। वैदिक साहित्य में ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा गया है। ब्रह्म, परमात्मा, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वाधार, निर्विकार, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, अनादि, अनुपम, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, सच्चिदानन्द आदि अनेक नामों से उसका उल्लेख शास्त्रों में किया गया है। इनमें अनेक नाम ऐसे हैं जो अन्य तत्वों के लिए भी प्रयुक्त हो सकते हैं। कई नाम ऐसे हैं जो परमात्मा की एक विशेषता को प्रकट करते हैं। परमात्मा का 'ओ३म्' नाम, उसके पूर्ण स्वरूप को प्रकट करता है।

प्र+नव—जिस पद द्वारा प्रकट रूप से परमात्मा की स्तुति की जाये, उस पद को प्रणव कहते हैं। 'नव' पद का अन्य अर्थ नवीन भी है। जो पद अपने वाच्य का बोध कराने में सदा नवीन के समान ताजा बना रहे और जिसमें कभी शिथिलता न आये, ऐसा पद प्रणव है। परमात्मा का अन्य कोई नाम 'प्रणव' नहीं कहा जा सकता।

'ओ३म्' ईश्वर का वाचक और ईश्वर उसका वाच्य है। यह नित्य

सम्बन्ध है। पहले से विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट करता है। पद और अर्थ का ऐसा सम्बन्ध अनादिकाल से चालू है, यह तत्व ज्ञानी आचार्यों ने समझाया है। 'ओ३म्' का जप करते समय उसके अर्थ का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए।

अकार, उकार और मकार के योग से 'ओम्' यह अक्षर सिद्ध है। यह नाम परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसे पिता-पुत्र का सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध हो जाता है।

क. जैसे अकार से—

1. **विराट:**—जो विविध जगत का प्रकाश करने वाला है।

2. **अग्नि:**—जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है।

3. **विश्व:**—जिसमें सब जगत प्रवेश कर रहा है और सर्वत्र प्रविष्ट है।

ख. उकार से—

1. **हिरण्यगर्भ:**—जिसके गर्भ में सूर्यादि लोक प्रकाश करने वाले हैं। ज्योति के नाम हिरण्य, अमृत और कीति हैं।

2. **वायु:**—जो अनन्त बल वाला और सबको धारण करने वाला है।

3. **तेजस:**—जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत का प्रकाशक है।

ग. मकार से—

1. **ईश्वर:**—जो सब जगत क उत्पादक, सर्वशक्तिमान, स्वामी और न्यायकारी है।

2. **आदित्य:**—जो नाशरहित है।

3. **प्राज्ञ:**—जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है।

निम्नलिखित प्रकार से परस्पर सम्बन्ध है:—

क्र.सं.	**अक्षर**	**व्याहृति**	**विषय**	**वेद**	**ऋषि**	**लोक**
1.	अ	भू:	ज्ञान	ऋग्वेद	अग्नि	पृथ्वी
2.	उ	भुव:	कर्म	यजुर्वेद	वायु	अन्तरिक्ष
3.	म	स्व:	उपासना	सामवेद	आदित्य	द्युलोक

जो ओ३म् की एकमात्रा 'अ' का ध्यान करता है, अर्थात् केवल ज्ञानकाण्ड में रत है तथा कर्म और उपासना से शून्य है, उसका जन्म मनुष्य

योनि में अवश्य होगा, चाहे कितनी ही दु:खपूर्ण योनि हो। जो व्यक्ति 'ओ३म्' की दो मात्रा 'अ' और 'उ' का ध्यान करता है, अर्थात् ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड में रत रहता है, उसको स्वर्ग अर्थात् सर्वसुखपूर्ण जीवन प्राप्त होता है, परन्तु मुक्ति इन दोनों काण्डों से भी नहीं मिल सकती। जो ओ३म् की तीनों मात्राओं का ध्यान करता है अर्थात् अ-ज्ञानकाण्ड, उ-कर्मकाण्ड, म-उपासनाकाण्ड—इन तीनों में लगा है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है और उसे प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है। वह जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है।

व्याहृतियाँ

1. भूः—भूरिति वै प्राणः—'यः प्राणयति चराऽचरं जगत स 'भूः' स्वयं भूरीश्वरः'। जो सब जगत के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयंभू है, उस प्राण का वाचक हो के "भूः" परमेश्वर का नाम है।

2. भुवः—भुवरित्यपानः—'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः' जो सब दु:खों से रहित और जिसके संग से जीव सब दु:खों से छूट जाते हैं, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है।

3. स्वः—यो विविधं जगत व्यापनोति स व्यानः। स्वरिति व्यानः—जो नानाविध जगत में व्यापक हो के सबको धारण करता है, नियम में रखता है और सुखस्वरूप है, अत: उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

गायत्री-मन्त्र का अर्थ

(सवितुः) जो सब जगत का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देने वाला है, (वरेण्यं) जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य और वरणीय है, (भर्गः) जो निष्पाप, पापरहित और शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाशक और सब सुखों का दाता है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। (यः) जो पूर्वोक्त परमेश्वर है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करें।

इसलिए सब मनुष्यों को चाहिए कि सच्चिदानन्द, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, कृपालु, सब जगत के जनक और धारण करने हारे परमेश्वर की ही सदा उपासना करे। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्यदेहरूप वृक्ष के फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सब मनुष्यों को प्राप्त हों।

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता है तू।।
तेरा महान तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

तत् शब्द के अर्थ हैं—1. परोक्ष—जो इन्द्रियातीत हो। 2. प्रक्रान्त—जिसका प्रकरण पूर्व से चल रहा हो। 3. प्रसिद्ध—जो अति प्रसिद्ध हो। 4. अनुभूत—जो अपना अनुभव किया हुआ विषय हो। भगवान योगियों के अनुभव का विषय है।

1. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'—यह गायत्री का प्रथम पाद है, जो ऋग्वेद से दुहा गया है।

2. 'भर्गो देवस्य धीमहि'—यह गायत्री का द्वितीय पाद है जो यजुर्वेद से दुहा गया है।

3. 'धियो यो नः प्रचोदयात्'—यह गायत्री का तृतीय पाद है जो सामवेद से दुहा गया है।

तीन वेदों से तीन पाद दुहे का अभिप्राय यह है, कि ऋग्वेद में पदार्थों की स्तुति है। परमात्मा की भी स्तुति है। यजुर्वेद कर्मकाण्डपरक है—अतः द्वितीय पाद में भक्त के कर्त्तव्य का विधान है कि 'धीमहि'—हम प्रभु के स्वरूप को धारण करें। सामवेद उपासनापरक है—'धियो यो नः प्रचोदयात्'—परमात्मा हमारी बुद्धियों को चलावें।

केवल गायत्री मन्त्र के शब्दों को बार-बार उच्चारण करने से कुछ लाभ नहीं होगा, जब तक मन्त्र का अर्थ न जानता हो और तदनुकूल उसका आचरण न हो।

वेदों के अन्य मन्त्रों में किसी में प्रभु की स्तुति-मात्र है, किसी में प्रार्थना और किसी में उपासना। कुछ मन्त्रों में दो बातें भी मिलती हैं। परन्तु एक ही गायत्री मन्त्र में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों हैं। ओ३म् का सर्वोत्तम नाम और तीन महा-व्याहृतियाँ होने से, गायत्री मन्त्र को सर्वोच्च उत्कृष्ट मन्त्र बनाया है।

आत्म-निर्माण व शुद्धि

मानव जीवन का सदुपयोग आत्म निर्माण द्वारा किया जा सकता है। आत्म निर्माण के पश्चात् ही हम समाज, राष्ट्र और संसार का भला कर सकते हैं। आत्म निर्माण में निम्नलिखित साधन उपयोगी हैं:—

1. शरीर रक्षा—मानव का शरीर आत्म निर्माण का प्रथम साधन है, जिसकी सहायता से मानव कर्म पथ पर अग्रसर होता है। संसार की अच्छाई या बुराई को स्वस्थ मनुष्य ही समझ सकता है। जिस प्रकार श्रावण के अन्धे को सर्वत्र हरा ही हरा दिखाई देता है, उसी प्रकार रोगी शरीर वाले को सम्पूर्ण संसार रोगग्रस्त दिखाई देता है। अत: स्वस्थ और नीरोग शरीर बना कर ही अपना जीवन सफल बनाया जा सकता है।

स्वास्थ्य शुद्ध और पवित्र भोजन पर निर्भर करता है। पुरानी कहावत है—जैसा खाओगे अन्न, वैसा बनेगा मन। जैसा पिओगे पानी, वैसी बनेगी वाणी। भोजन के अनुसार ही भावनाओं का निर्माण होता है। शुद्ध सात्त्विक भोजन करने वाला व्यक्ति आत्म निर्माण सरलता से कर सकता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों के प्रति कभी भी घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और क्रोध नहीं करेगा। अण्डा, मांस और उत्तेजक पदार्थ खाने वाला मानव, अन्दर से खोखला होता है। वह उस रेत से बनी दीवार की तरह होता है, जो जरा से धक्के से गिर सकती है। आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, परिश्रम, प्राणायाम, दूध, छाछ, फलों के रस, ये सभी तत्त्व शरीर की रक्षा के लिए अमूल्य हैं। उपवास द्वारा रोग से मुक्ति तथा महर्षि पतंजलि के बताये अष्टांग योग द्वारा, शरीर को पूर्णतया स्वस्थ बनाया जा सकता है।

2. बुद्धि विकास—आत्म निर्माण का दूसरा साधन बुद्धि का विकास करना है। बुद्धि विकास के निम्नलिखित 4 साधन हैं:—

क. सत्संग—विद्वान और अच्छे सभ्य सज्जनों के साथ सत्संग करने से बुद्धि का विकास होता है। ज्ञान प्राप्त करके ही मानव की गति ऊर्ध्व होती है। जैसे कीड़ा, जिस रंग के पौधों और पत्तों पर पलता है, उसका वैसा ही

रंग हो जाता है। ऐसे ही सत्संग में विद्वानों के सम्पर्क में आने से संसार में प्रचलित बुराइयों से बचने के साधन प्राप्त होते हैं। अपनी समस्याओं का हल निकलता है। कठिनाइयों से मुक्ति के साधन, सत्संग में ही प्राप्त होते हैं।

ख. अध्ययन—अध्ययन से विद्वानों व महापुरुषों के विचारों का सत्संग प्राप्त होता है। पुस्तकों में ऐसे महापुरुषों से सम्पर्क स्थापित हो सकता है, जो इस संसार में नहीं हैं, किन्तु मानव जगत में अपनी छाप छोड़ गये हैं। आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञान, कर्म व उपासना का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उत्तम धार्मिक ग्रन्थों का ही अध्ययन करना चाहिए। नियमित अध्ययन से शुद्ध विचार होकर, बुद्धि का विकास होता है।

ग. सद्विचार—अच्छे विचारों में रमण करने से भी बुद्धि का विकास होता है। यह विचारना चाहिए कि परमात्मा कण-कण में विराजमान होकर, अपनी सत्ता से संसार को गति दे रहा है। जहाँ आप है, वहां परमात्मा है। परमात्मा हमारा सदैव सहायक है। आपका शरीर भी परमात्मा का निवास स्थान है। इस प्रकार विचारने वाला व्यक्ति, अपना आत्म निर्माण कर सकता है।

घ. भूल—भूल से बुद्धि का विकास होता है। एक भूल का अर्थ है, आगे के लिए अक्लमंदी। संसार के अनेक पशु भी भूल से सीखते हैं, परन्तु मानव शीघ्रता से सीख सकता है। अनेक भूलों से व्यक्ति बुद्धि का विकास कर सकता है, परन्तु भूल दोहराई नहीं जानी चाहिए। अनेक महापुरुष, अपनी भूलों को सुधार कर महान बने हैं।

3. दैवी-सम्पदाओं का विकास—धैर्य, उत्साह, प्रेम, उदारता, दानशीलता, उपकार, नम्रता, न्याय, सत्यवचन आदि दैवी व दिव्य भावनाओं का विकास करना चाहिए। कुत्सित भावनाओं जैसे क्रोध, घृणा, द्वेष, लोभ, अभिमान, निर्दयता व निराशा जैसी भावनाओं को धीरे-धीरे दूर कर देना चाहिए। ज्यों-ज्यों दैवी गुण विकसित होंगे, दुर्गण स्वयं दग्ध होते जायेंगे। मानव में सात्विक, राजसिक व तामसिक, तीनों गुण होते हैं। एक न एक गुण मानव में हमेशा प्रधान बना रहता है। यदि ध्यान रखा जाए, तो राजसिक व तामसिक गुणों को दबाकर सात्विक गुण को प्रकट किया जा सकता है। संसार से प्रेम कीजिए, आपके अहित चाहने वाले स्वयं दब जायेंगे, मित्रता में वृद्धि होगी।

4. आत्म-भाव का विस्तार—साधक की दृष्टि से आत्म निर्माण का

अन्तिम साधन है—आत्म-भाव का विस्तार। प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु तथा जगत को ब्रह्मरूप देखता है। सर्वत्र आत्म-भाव का दर्शन करता है। ऐसा मानव अपने आपको शरीर नहीं आत्मा समझता है। वह देश, जाति, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर व वर्ण की संकुचित भूमि से उठकर, सब मनुष्यों में, एक रस बहने वाली आत्मा को ही देखता है। संसार की वासनाओं की तरंगें उसे दुखी नहीं करती। वह देहपूजा में रत्त नहीं रहता, परन्तु आत्मा की आराधना करता है। आत्मा के ज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है। सच्ची शान्ति, सच्चा सुख व सच्ची ज्योति आत्मा से ही प्राप्त हो जाती है। संसार के प्राणीमात्र को अपना बन्धु मानता है। 'मैं' के स्थान पर 'हम' की भावना रखता है। सभी की उन्नति हो, सभी आगे बढ़ें, जितना मिले, सभी बाँटकर, खुशी से खायें। शास्त्रों में कहा है 'जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है।' सबकी उन्नति और सबके कल्याण के विषय में ही सोचें। मन में यह विचारिये:—"मैं आरोग्यता, प्रेम और भ्रातृभाव के विचारों की लहरें, समस्त विश्व के प्राणीमात्र को भेजता हूँ। संसार में मेरा कोई भी द्वेषी नहीं है। मैं सब प्राणीमात्र में परमात्मा का दर्शन पाता हूँ। सब सुखी हों, अभय हों, रोगरहित हों और सबका कल्याण हो।"

"अयं निज परो वेत्ति गणना लघु चेत्तसाम्,
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

अर्थात्—यह मेरा है, यह दूसरों का है, यह छोटे लोगों की सोच है। उदार चरित्र वालों का तो सारा विश्व ही घर होता है।

दीर्घजीवन के लिए शरीर की स्वस्थता अत्यावश्यक है। तपरहित मनुष्य इस स्वस्थता को प्राप्त नहीं कर सकता। तप से इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं। निर्मल इन्द्रियाँ शक्तिशाली होकर सारे शरीर को स्वस्थ बनाये रखती हैं। इन्द्रियाँ शुद्ध करने की निम्नलिखित पाँच रीतियाँ हैं:—

1. वाणी का तप—सर्वप्रथम वाणी के तप का आचरण करना चाहिए। सत्यभाषण और मौन रहना, वाणी के तप हैं। सत्यभाषण करने वाला जो कुछ बोलता है, वह अवश्यमेव होकर रहता है। वाणी के दोषों को दूर करके, उसमें प्रकाश और प्रसन्नता लानी चाहिए। जो कुछ भी बोला जाए, वह सावधानी से बोला जाए। इससे वाणी का तेज और प्रभाव बहुत बढ़ता है। सत्य, तप, यथार्थ ज्ञान और ब्रह्मचर्य, परमात्मा से मिलने के साधन हैं। कहा है:—

1. "सत्यमेव व्रतं यस्य, दया दीनेषु सर्वदा।
काम क्रोधो वशं यस्य, स जनः कथ्यते बुधैः।" उच्चैः।
2. सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियं।
प्रियं न नानृतं ब्रूयात्, एषःधर्मः सनातनः।।
3. सत्यं वै देवा, अनृतं मनुष्याः।
4. सत्येन पन्थाः विततो देवयान।

2. प्राणों का तपः—प्राणायाम से प्राण का तप होता है। जिस प्रकार फुंकनी से फूंककर आग जलाई जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम से शरीर की नस नाड़ियों की शुद्धता होती है। शरीर के दोष दूर होते हैं, तेज बढ़ता है, प्रकाश बढ़ता है और शरीर की शुद्धि होती है। इस अनुष्ठान से मनुष्य निर्दोष हो जाता है। वेद-मन्त्र कहता है:—

"प्राणाय नमो यस्य सर्वंमिद वशे"

अर्थात् जिसके आधीन सब जगत है, उस प्राण के लिए मेरा नमस्कार हो। प्राण परमात्मा का सबसे सूक्ष्म तत्व है और मन प्रकृति का।

"दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।"

जैसे अग्नि में तपने से धातुओं के मल नष्ट होकर शुद्ध हो जाते हैं। वैसे प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष, निर्मल हो जाते हैं।

3. दृष्टि का तप—दुष्ट भावना से किसी की ओर न देखना, मंगल भावना से ही अपनी दृष्टि का उपयोग करना, दृष्टि का तप बढ़ाता है। अपनी दृष्टि को कुमार्ग से हटाकर, सुमार्ग पर चलाना भी एक बड़ा भारी तप है।

"भद्रं पश्येम् अक्षभिः यजत्रा"

अर्थात् हम आँखों से भद्र ही देखें।

4. मन का तप—मन सब इन्द्रियों का स्वामी है। वही इन्द्रियों को चलाने वाला होने से इन्द्रियाधिपति है। इसलिए सभी शास्त्रों में कहा है कि मनुष्य यदि इन्द्रियों का निग्रह करना चाहता है, तो उसे चाहिए, प्रथम मन का निग्रह करे। मन का निग्रह करने से सभी इन्द्रियाँ स्वयं वश में आ जाएंगी। सत्यपालन मन का तप है। बुरे विचारों को मन से दूर करना मानसिक तप है। इस प्रकार तप से मन के दोष दूर होते हैं। मन पवित्र होता है और शुद्ध होकर तेजस्वी होता है। जिसका मन शुद्ध और पवित्र होता है, वह महात्मा

होता है। जिसका मन अशुद्ध और मलिन विचारों वाला होता है, वह दुष्ट कहलाता है। मन की शक्ति से मनुष्य की योग्यता निश्चित होती है। शास्त्र में कहा है '**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धन मोक्षयो**'। अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

5. वीर्य का तप (ब्रह्मचर्य)—जननेन्द्रिय का, वीर्य का अथवा काम का तप ब्रह्मचर्य बढ़ाता है। ब्रह्मचर्य से अनन्त प्रकार के लाभ होते हैं। रोगादि का भय दूर होता है। प्राकृतिक आरोग्य प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य हर प्रकार से मानवों के उद्धार के लिए उपयोगी है। वीर्यरक्षण से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है। प्राण का वीर्य के साथ सम्बन्ध है।

मनुष्य का शरीर स्वस्थ होकर ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

"सोपान भूतं मोक्षस्य मानुष्यं, प्राप्य दुर्लभं।
यस्य तारयति न आत्मानं, तत्र पापरो को अत्र।।"

मनुष्य का शरीर मोक्ष प्राप्त करने की सीढ़ी है, यह शरीर मिलने पर भी जो मोक्ष प्राप्त नहीं करता, उससे बड़ा पापी कौन है। आदि शंकराचार्य ने कहा है, "**नरजन्म जन्तुनां दुर्लभम्**" प्राणियों में मानव का जन्म मिलना बड़ा कठिन है।

★ कर्मों के फल को मानव नष्ट नहीं कर सकता।
★ प्रारब्ध सदा कर्मों से बना हुआ होता है।
★ दुराचारी मानव भी अपनी प्रवृत्ति बदलकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।
★ जो मानव दूसरों को नष्ट करने का विचार बनाता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।
★ जो मानव संसार में परमात्मा से भयभीत रहता है, वह ऋषि बन जाता है।
★ संसार में जीवन का श्राद्ध होना चाहिए, मृत्यु का नहीं।
★ यज्ञ मानव का जीवन है।
★ संसार एक कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव जैसी कल्पना करता है, वैसा ही बन जाता है।
★ संसार एक विचारशाला है, एक प्रकार की विज्ञानशाला है, यज्ञशाला है।

जीवन और मृत्यु

आत्मा इस शरीर को त्यागकर अन्तरिक्ष में रमण करता है। परमात्मा के नियम के अनुकूल, उस स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ इसका भोग होता है। इस शरीर को त्यागने के पश्चात् इस आत्मा का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसका सम्बन्ध इसके कर्मों से होता है। न पुत्र से होता है, न पौत्र से होता है, न पत्नी से होता है, न गुरू और राजा-जनों से होता है। उस समय इसके द्वारा केवल कर्मों की श्रृंखला रह जाती है और कुछ नहीं रहता।

अब हम ज्ञान और विज्ञान के ऊँचे शिखर पर पहुँचकर जीवन और मृत्यु के ऊपर विचार करते हैं। आत्मा को जीवन परमात्मा से मिलता है क्योंकि वह आत्मा का माता-पिता है। आत्मा को ज्ञान रूपी आनन्द परमात्मा से मिलता है। जीवन नाम है ज्ञान का, जीवन नाम है विवेक का, जीवन नाम है दूसरों से प्रीति करने का और जीवन नाम है परमात्मा की गोद में जाने का।

मृत्यु नाम है दूसरों को कष्ट देने का। द्वेष का नाम मृत्यु है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में जो फंस जाता है, उसका नाम मृत्यु है। जिसमें विवेक न हो, वह सदैव मृत्यु के आंगन में विश्राम करता है। जो दूसरे जीवों का भक्षण करते हैं, वे मृत्यु शैय्या पर हैं। हमें जीवन और मृत्यु पर विचार करना चाहिए। जो ज्ञान प्राप्त करके, अविवेकी पुरूषों में उस ज्ञान का प्रचार करते हैं, उनका जीवन धन्य है। परमात्मा पर श्रद्धा और निष्ठा करने से मानव का उत्थान हो जाता है। वह प्राणियों को जीवन की रश्मियां देता रहता है। उन रश्मियों को लेकर कोई शान्त कर दे या प्रकाश में चला जाए, यह मानव पर निर्भर करता है। जो दुराचार करता है, वह मृत्यु शैय्या पर है।

हमारा वैदिक साहित्य और ऋषियों का आदेश यह पुकार रहा है कि इस शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं; यह तो जैसे मनुष्य धारण किए हुए वस्त्रों को त्याग देता है, ऐसे ही यह आत्मा शरीर रूपी वस्त्र को त्याग देता है। अपने कर्मों के संस्कारों से उसे शरीर मिलता है, जब वह शरीर

रहित हो जाता है तब वह परमात्मा की गोद में पहुँच जाता है। वास्तविक विज्ञान और विवेक रूपी वस्त्र प्राप्त होने के पश्चात् उसको शरीर रूपी वस्त्र की आवश्यकता नहीं रहती। इसी का नाम जीवन है।

संसार में जीवन का श्राद्ध होता है, मृत्यु का नहीं होता। श्राद्ध नाम है श्रद्धा का। हमें जीवन का श्राद्ध करना चाहिए। हमें श्रद्धा करनी है, तो जीवन पर करनी है। जिन ऋषियों की वाणी अमर है, उस पर श्रद्धा करनी चाहिए। महर्षि पतंजलि, महर्षि कणाद, महर्षि नारद, महर्षि लोमश, महर्षि महानन्द व महर्षि दयानन्द की वाणी पर और उनके कर्मों पर श्रद्धा करनी चाहिए। माता-पिता और विवेकी पुरुषों के जीवन पर श्रद्धा करनी चाहिए।

आज संसार में श्रद्धावान और संकल्पवादी बनो। संकल्प धारण करो कि मैं कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं करूँगा। किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूँगा। हृदय से संकल्पवादी बनो कि मैं प्रतिदिन परमात्मा की भक्ति करूँगा। मांस व अन्य अप्रिय पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा। अपने शरीर को ब्रह्मचर्य रूपी गहने से सजाऊँगा।

एक अलंकार यह है कि एक समय देवऋषि नारद मृत मण्डल में भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते हुए उन्होंने एक दुखित मनुष्य को देखा। वह दुखित इसलिए था कि उसकी पत्नी महा कलेषिणी थी। वह नित्यप्रति अपने पति को दण्ड दिया करती थी। एक दिन वह अपनी पत्नी क भय से एकान्त स्थान में विराजमान हो गया और परमात्मा से याचना कर रहा था कि "हे प्रभु! इस समय मैं महादुखी हूँ, मुझे यहाँ से ले जाओ।" इतने में देवऋषि नारद आ पधारे। नारद मुनि बोले, "चलो, तुम्हें स्वर्ग में ले चलें।" वह मनुष्य प्रसन्न होकर बोला, "चलो भगवन्।" दोनों वहाँ से चलकर स्वर्ग के द्वार पर जा पहुँचे।

उस स्वर्ग द्वार के आगे एक कल्पवृक्ष था। नारद मुनि बोले कि तुम इस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो जाओ और मैं परमात्मा से तुम्हारे लिए आज्ञा ले आऊँ। अब नारद मुनि परमात्मा के पास पहुँचे और वह आदमी उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गया।

मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी, उस मनुष्य के हृदय में कल्पना जागी कि इतनी मन्द सुगन्धि वायु मन को प्रसन्न करने वाली चल रही है, यहाँ एक सुन्दर आसन होना चाहिए था। उसके लिए आसन लग गया। जब वह आसन पर विराजमान हो गया, तो कल्पना शक्ति जागी कि यहाँ तो विश्राम

करने वाला आसन होना चाहिए था। वह तो कल्पवृक्ष के नीचे था, वहाँ तो कल्पना की और वह वस्तु आई, अत: विश्राम करने वाला आसन भी लग गया। अब उसके मन में कल्पना जागी कि यहाँ तो नाना अप्सराएं भी होनी चाहिए थी। नाना अप्सराएं भी आ गई और सेवा करने लगी। उस समय उस मनुष्य के मन में मृतलोकी पत्नी भी स्मरण हो गई और कहने लगा कि यदि वह मृतलोक वाली पत्नी यहाँ होती, तो मेरे ऊपर डंडा भी होता। अब देखा तो वह मृतलोक वाली पत्नी भी आ पहुँची। आगे-आगे वह जा रहा है और डंडा लिए पत्नी उसके पीछे है।

इतने में देवऋषि नारद जी आ पधारे और देखा कि यह क्या हो रहा है? उन्होंने दीर्घ वाणी से कहा कि कल्पना को त्याग। उस मनुष्य ने कल्पना को त्यागा तो वहाँ न पत्नी है, न अप्सराएं हैं और न आसन है। वहाँ केवल कल्पवृक्ष है। नारद मुनि आश्चर्य से बोले, "अरे पापी! तूने इस कल्पवृक्ष के नीचे आकर भी भोग-विलास की कल्पना की, यदि तू यहाँ स्वर्ग की कल्पना करता, तो तुझे स्वर्ग प्राप्त हो जाता, यदि तू यहाँ ऋषि बनने की कल्पना करता, तो ऋषि पद प्राप्त हो जाता। परमात्मा से मिलान की कल्पना करता, तो परमात्मा से मिलान हो जाता।

अलंकार का अभिप्राय यह है कि यहाँ संकल्प करना है, तो स्वर्ग के गामी बनने का करो। परमात्मा ने यह संसार एक कल्पवृक्ष के रूप में रचा है। यहाँ आत्मा जो भी कल्पना करेगी, वही वस्तु प्राप्त हो जायेगी। परन्तु संकल्प यथार्थ होना चाहिए। संकल्प में विवेक होना चाहिए, जिससे मानव का जीवन पवित्र हो जाए।

मृत्यु के श्रवण से अन्त:करण व्याकुल हो जाता है। प्राणीमात्र को इससे भय लगता है। इसका ध्यान आते ही सर्व प्रकार का प्रयत्न ढ़ीला हो जाता है। अनेक कष्ट पाता और दु:ख उठाता हुआ मनुष्य भी जीवन की लालसा से मरने की इच्छा नहीं करता। डरता हुआ जीने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता है। कौन बलवान मृत्यु का सामना कर सकता है। प्राणी उत्पन्न होकर स्वयं मृत्यु की ओर चला जाता है। मनुष्य तो इसको भूल जाते हैं, परन्तु मृत्यु उनको ध्यान में रखता हुआ, उनके पीछे ही चला आता है। कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य अपने पक्के और सच्चे साथी को नहीं पहचानता। प्राणी इससे मुख मोड़ता है, परन्तु यह किसी का साथ नहीं छोड़ता।

डाक्टरों व वैद्य हकीमों ने बड़ी-बड़ी उत्तम औषधियों को बनाया, धन कमाया और नाम पाया है। मृत्यु से बचने का कोई उपाय हाथ नहीं आया है। मनुष्य यदि कुछ विचार से काम करे, तो लोक और परलोक दोनों ही सुधर सकते हैं। जो सांसारिक मोह ममता में नहीं फंसता, उसे हँसाता है। जो भयभीत होकर डरता है, उसे रूलाता है। मृत्यु ने महात्मा बुद्ध, स्वामी शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द को सन्मार्ग दिखाया।

मृत्यु इतनी भयानक नहीं जितना कि लोग इसे जानते हैं। यदि यह न हो तो जीवन नीरस, कटु और भार हो जाये। मृत्यु की याद से परमात्मा का ध्यान आता है। भूलने से परमात्मा को भी भूल जाता है।

शास्त्र कहता है कि अविद्या के बिना मृत्यु अन्य कोई वस्तु नहीं है। जहाँ अविद्या का साम्राज्य है, वहाँ ही मृत्यु की सत्ता का सद्भाव है। अविद्या के दूर हो जाने पर, मृत्यु से डर नहीं लगता है। ईशोपनिषद् में अविद्या को मृत्यु और विद्या को अमृत कहा है। जब विद्या के प्रकाश से अविद्या का नाश हो जाता है, तब कर्म क्षीण और बलहीन होकर फिर जन्म का कारण नहीं होता।

जिस प्रकार नदी के दो तट होते हैं, उनके मध्य में जल का प्रवाह बहता है। उस प्रवाह का नाम ही नदी है। जल ऊपर से आता और आगे बढ़ता जाता है। जन्म-मरण भी जीवन के दो तट या किनारे हैं, उत्पत्ति और विनाश भी इसका ही दूसरा नाम है। जीवन के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के उपायों को रचता है। सांसारिक वस्तुओं को उपलब्ध करके प्रसन्न होता है। जब मृत्यु उसके समस्त खेल को, उसकी इच्छा के विपरीत उसको बिगाड़ देता है, तब दु:खी होता है। मोह-ममता और स्नेह, वस्तुओं से जोड़ने से दु:ख का निमित्त स्वयं ही बनता है।

संसार में सुख व दु:ख दोनों का समावेश है। जो मनुष्य अपने पुरूषार्थ से मृत्यु को परे हटाता है, वह प्रसन्न है। जिसको मृत्यु अपने बल से फैंकता है, वह रोता है। तीन उदाहरण—(1) नदी से पार जाने के लिए लोग नाव पर आरूढ़ होते हैं। दूसरे तट पर जाकर स्वयं ही नाव को छोड़ देते हैं। यदि किसी को जल-प्रवाह के मध्य में नाव से उतारा जाए, तो उसे दु:ख होता है, क्योंकि उसे नाव छोड़ती है।

(2) रेल में यात्रा करने वाला यात्री अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर स्वयं उतर जाता है। यदि उसे यात्रा के मध्य में बलात् गाड़ी से उतार दिया

जाये, तो अत्यन्त दु:ख होता है। सबको अपने स्थान पर ही उतरना अच्छा लगता है।

(3) विद्यालय में अध्ययन करने वाला विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर ही विद्यालय छोड़ना चाहता है। यदि किसी कारण से मध्य में ही विद्यालय छोड़ना पड़े, तो उसे दु:खप्रद होता है।

इसी प्रकार मनुष्य का जन्म बड़े उत्तम कार्यों का फल है। यही एक स्थान है, जहाँ पर यदि जीवात्मा प्रयत्न करे, तो जन्म-मरण की उलझन से दूर हो सकता है। परन्तु वासनाओं से विवश होकर इस संसार में ही उलझा रहता है।

जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ संसार को छोड़ता है, वह परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है। ऐसे मनुष्य को मृत्यु का भय नहीं होता। उसे मृत्यु अति तुच्छ प्रतीत होती है। कर्त्तव्यहीन मनुष्य को सांसारिक पदार्थों की ममता सताती है। मनुष्य जन्म का महान उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है।

जब यह आत्मा शरीर को त्याग देता है, तो इसके परमाणु विखंडित होकर जल के परमाणु जल में, पृथ्वी के पृथ्वी में, अन्तरिक्ष के अन्तरिक्ष में तथा अग्नि के अग्नि में मिल जाते हैं। इस प्रकार कोई भी परमाणु नष्ट नहीं होता। अत: मृत्यु शब्द बनता ही नहीं।

यौगिकता में योगी कहता है कि मृत्यु संसार में कोई वस्तु नहीं है। मृत्यु अज्ञानता का शब्द है। जो अज्ञान हृदय में छा जाता है, मृत्यु उसका प्रतीक है। यह संसार सर्वत्र प्रकाश में पिरोया हुआ है। ब्रह्माण्ड का निर्माण पंच महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) से हुआ है। पंच महाभूतों के एक कण का भी अभाव नहीं होता। अत: मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठता।

युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा था कि संसार में महान आश्चर्य है, तो मृत्यु है। मानव सदैव उससे बचने का प्रयत्न करता है। फिर भी एक दिन उसका आहार हो ही जाता है। वास्तव में शरीर त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है, यह तो रूपान्तरण हो जाना है। मृत्यु उसको कहते हैं जो मानव कायर बनकर रहता है। जो मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में लहलहायित रहता है, अभिमानी बनकर रहता है, दूसरों को अपमानित करता है, वह संसार के क्षेत्र में कायर होता है।

ऐसे व्यक्ति को किसी प्रकार का प्रकाश प्राप्त नहीं होता। वह अन्धकार ही अन्धकार में रमण करता रहता है। कायर वह होता है, जो मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। जिसका अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं होता। उसकी अपकीर्ति होती रहती है। परिणामस्वरूप उस प्राणी के भौतिक तत्त्व वायु में मिलते रहते हैं। प्रभु दण्डों का स्वामी होने के नाते, उस प्राणी को दण्ड ही देता रहता है।

मृत्यु का भय सभी प्राणियों को होता है, परन्तु उस प्राणी को नहीं होता, जो ब्रह्मवेत्ता होता है, जो विचारक होता है, जिसके स्वप्न में भी घृणा नहीं होती, उसकी संसार में मृत्यु नहीं होती। मृत्यु उन प्राणियों की नहीं होती जो अपने मानवीय हृदय तथा परमपिता परमात्मा के हृदय, दोनों का समन्वय कर लेते हैं। मानव के हृदय में व्यापकवाद आ जाता है।

जैसे परमात्मा का हृदय व्यापकता में रमण करने वाला है, वैसे ही मानव का हृदय व्यापक बन जाता है। जब हृदय-हृदय का समन्वय हो जाता है, तो वही मानव ब्रह्म को जानने वाला बनता है। वह ब्रह्मवेत्ता पुरूष, महापुरूष कहलाया जाता है। उस मानव के हृदय में घृणा का स्रोत उत्पन्न नहीं होता। जब घृणा नहीं होती, तो उसका हृदय निर्मल होता है। स्वच्छ और पवित्र होता है। जितना हृदय पवित्र होता है, उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है। जो प्राणी अपनी प्रवृत्तियों का दमन करने वाला होता है, परमपिता परमात्मा से उसका मिलान होने लगता है।

निष्कर्ष यह है कि मृत्यु केवल भौतिकवाद में है। आध्यात्मिकवाद में कोई मृत्यु नहीं होती।

जीवन और मृत्यु, दोनों परमात्मा की कृपा से ही जीवात्मा के कर्मानुसार, फल देती रहती हैं। निम्नलिखित श्लोक विचारणीय है:-

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवति अनाथो अपि वने विसर्जितः, कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति।"

अर्थात्-जिसकी रक्षा परमात्मा करता है, वह बिना रक्षा किए भी सुरक्षित रहता है, जिसके दैव प्रतिकूल होता है, वह अच्छी तरह से रक्षा करने पर भी नष्ट हो जात है। वन में छोड़ा हुआ भी अनाथ जीता रहता है, घर में प्रयत्न करने पर भी सुरक्षित नष्ट हो जाता है।

अतः संसार में निर्भय होकर जीना चाहिए।

महाराजा मनु द्वारा सर्वप्रथम राष्ट्र निर्माण

महाराजा मनु से पूर्व करोड़ों वर्षों तक यह संसार बिना राष्ट्र के चलता रहा, क्योंकि सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। जहां कर्त्तव्य का पालन किया जाता है, वहां त्याग और तपस्या होती है। राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता तब होती है जब मानव अपने कर्त्तव्यों से दूर चला जाता है और धर्म का ह्रास होने लगता है। राष्ट्र के नियम धर्म की रक्षा के लिए बनाए जाते हैं। जब तक सब मानव अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिए प्रयत्न करते रहते हैं, उस समय तक राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती।

प्रजा को अनुशासन में लाने के लिए तथा धर्म की रक्षा के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है। सर्वप्रथम संसार में महाराजा मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया। इनकी माता का नाम लक्ष्मी और पिता का नाम सोमभामकेतु ऋषि था। मनु महाराज जलचर, थलचर तथा नभचर सभी जीवों पर दया करने वाले थे।

जब महाराजा मनु को वास्तव में प्रतीत हो गया कि अब धर्म पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर आक्रमण होने लगा है, दैत्यों का प्रभाव अधिक होता चला जा रहा है, देवता शून्यता को प्राप्त होते चले जा रहे हैं, तब उन्होंने आदि ऋषियों को एकत्रित किया। महाराजा मनु ने उनसे कहा कि मैं आज वेदों का अध्ययन कर रहा था, तो वहां राष्ट्र का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था, कि राष्ट्र का भी नियम होता है। महर्षि तत्ववेत्ता ने कहा, "मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों में राष्ट्र का विधान है और उस समय में है जब मनुष्य अपने कर्त्तव्यों से विहीन हो जाता है, धर्म से पतित हो जाता है। धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है।"

उस समय मनु जी ने कहा कि मुझे आपकी सहायता प्राप्त होगी तो मैं राष्ट्र का निर्माण अवश्य करूंगा। दैत्यों को नष्ट करने के लिए और दुराचारियों का दुराचार नष्ट करने के लिए राष्ट्र का गठन होना बहुत

अनिवार्य है। ऋषियों ने कहा कि आप राष्ट्र का निर्माण अवश्य कीजिए। जो बन सकेगा, हम सहायता करेंगे।

महाराजा मनु ने ऋषियों की सहायता प्राप्त करके सबसे पूर्व वर्ण व्यवस्था स्थापित की। यह वर्ण व्यवस्था आधुनिक काल की तरह जाति प्रथा नहीं थी, अपितु शिक्षालयों में शिक्षा पाने के लिए ब्रह्मचारी जाता, तो आचार्य अपनी दिव्यता से ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी के स्वभाव को जानकर यह निर्धारित करता है कि यह किस वर्ण का है।

यदि कोई बुद्धिमान होता तथा ब्रह्मत्व पर उसकी बुद्धि चलती तो उसको ब्राह्मण की उपाधि देते। जिसकी बुद्धि वाणिज्य में तेज होती, तो उसे वैश्य तथा जो रक्षा करने वाला, अस्त्र-शस्त्र और धनुर्विद्या में रूचि लेने वाला होता तो उसे क्षत्रिय की उपाधि देते। जो इन तीनों में से किसी भी कार्य की, विद्या न पा सके तो उसे शूद्र की उपाधि देते। ये सब गुण, कर्म व स्वभाव द्वारा ही निश्चित किए जाते थे।

ऋषियों ने राष्ट्र के नियम बना दिए। इन नियमों का पालन कराने के लिए किसी राजा तथा राज्य के लिए किसी राजधानी की आवश्यकता अनुभव की गई। महाराजा मनु ने सर्वप्रथम इस शरीर रूपी अयोध्या की नकल करके अयोध्या नगरी का निर्माण किया। इस नगरी के नौ द्वार थे। जैसे नाभि शरीर का केन्द्र है, इसी प्रकार जहां बैठकर राजा न्याय करे वह राष्ट्र का केन्द्र कहलाया। भगवान मनु इस अयोध्या नगरी के प्रथम राजा बने।

राष्ट्र का निर्माण उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं ताकि वे सच्चे और अच्छे लोगों को कष्ट न दे पाएं। राष्ट्र उसको कहते हैं जहां प्राणिमात्र की रक्षा की जाती हो, गौ व अन्य सभी दूध देने वाले पशुओं की रक्षा की जाती हो तथा जहां विषैली वायु का शोषण करने वाले प्राणियों की रक्षा की जाती हो। इनकी रक्षा करना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि ये प्राणिमात्र को लाभ देते हैं।

जिस राष्ट्र में एक संस्कृति न हो व एक भाषा न हो, वहां मानवों के विचार कभी भी एकता में नहीं आ सकते। राष्ट्रीयता उसी समय आती है जब प्रजा में प्रीति तथा अपनापन होता है। जब प्रजा अन्न कहीं का ग्रहण करती है, गुणगान कहीं का गाती है, तो वह राष्ट्र नहीं होता। वह तो किसी समय शमशान भूमि बन जाता है।

जिस राष्ट्र में नारी अपने शृंगार को भ्रष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करती है वह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। जिस समाज में सुरापान, मांस-भक्षण और विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है, ऐसा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जब पुत्रियों के नग्न नृत्य कराए जाते हैं, उनको ब्रह्मचारी दृष्टिपात करते हैं तो उनकी प्रवृत्तियां व इन्द्रियां भ्रष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। दूषित होने पर उनके हृदय में कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती। जब कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती, तो अधिकार-अनाधिकार भी नहीं रहता। जहां अधिकार-अनाधिकार नहीं रहता वहां आलस्य और प्रमाद छा जाता है। आलस्य और प्रमाद आने पर मानव अपने लक्ष्य से दूर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव-मानव के रक्त का पिपासु बनकर राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति हो जाती है।

यदि राष्ट्र में द्रव्य (धन) का उचित विभाजन नहीं होता तो उससे पाप अधिक हो जाएंगे। राष्ट्र में एक नियम यह होना चाहिए कि मानव को एक-दूसरे से घृणा नहीं होनी चाहिए। इस प्रभु के राष्ट्र में दूसरों से घृणा करना व अपने को उच्च मानना, यह मानव का दुर्भाग्य ही होता है।

धर्म में सूक्ष्मता हुई तो राष्ट्र की आवश्यकता हुई। धर्म का पालन व कर्त्तव्य का पालन कराने के लिए कठोरता की आवश्यकता हुई। जहां राजा के साथ धर्म नहीं होता, वहां कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है। जहां कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है वहां स्वार्थ होता है। जहां स्वार्थ होता है वहां विनाशिता होती है। जहां विनाशिता होती है वहां अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और संसार विलासिता को प्राप्त हो जाता है।

★ हृदय से उच्चारण किया हुआ शब्द मानव के हृदय को बहुत प्रिय लगा करता है।
★ अन्धकार से प्रकाश में लाने को ही जागरण कहा जाता है।
★ ऊँचे कार्य का ऊँचा परिणाम अथवा फल होता है।
★ ऊँची संकल्प शक्ति से मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।
★ परमात्मा से मिलान करने वाली विद्या का पान करना ही सोमरस पान करना है। सोम नाम परमात्मा का रस नाम ज्ञान का है।

भगवान श्रीरामचन्द्र

माता कौशल्या ने महर्षि तत्त्व मुनि के आश्रम में अध्ययन करते हुए यह संकल्प किया था कि वह ऐसे महान बालक को जन्म देगी, जो संसार से आतताईयों का नाश करके, धर्म की पताका फहराएगा। पुत्रेष्टि-यज्ञ के पश्चात् माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गई। गर्भ की स्थापना हो जाने के पश्चात् माता कौशल्या का यही नियम था कि वह स्वयं कला-कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उससे अन्न ग्रहण करके सन्तुष्ट रहती थी। राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करती थी। वह प्रतिदिन यज्ञ करती थी और तपस्या में लीन रहती थी।

भगवान श्रीरामचन्द्र जी का जन्म होने के पश्चात् माता कौशल्या बालक को लोरियाँ देती रहती थी और वेदों का गान गाती और उनका पठन-पाठन चलता रहता। माता यज्ञ करती रहती और बालक दृष्टिपात करता रहता। माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को यज्ञ की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी। तीन वर्ष की आयु का बालक वेदों की ध्वनि गाता था और समिधाओं का चयन करके यज्ञ करता था।

भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने शिक्षा अध्ययन के तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों में उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं और शिष्टाचार में परिणत कराया। द्वितीय दस वर्षों में विद्याध्ययन और धनुर्विद्या तथा अन्तिम दस वर्षों में विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन। पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है। जो पृथ्वी वज्र के तुल्य हो, वह अहिल्या कहलाई जाती है। ऐसी भूमि में अन्न और वनस्पति उत्पन्न नहीं होती। भगवान राम एक समय अहिल्या पर अध्ययन कर रहे थे तो विज्ञानशाला में महर्षि भारद्वाज का पदार्पण हुआ।

महर्षि भारद्वाज ने एक ऐसा यन्त्र जाना था जो पृथ्वी की परतों में, चाहे वे जलाशयों अथवा समुद्र की तरंगों में भी क्यों न हों, दस-दस योजन तक यह भास करा देता था कि अमुक स्थान पर अमुक धातु है। उन्होंने राम को

अपनी विज्ञानशाला में ले जाकर उस यन्त्र का दिग्दर्शन कराया। भगवान राम छः मास तक महर्षि वशिष्ठ के आश्रम को त्यागकर महर्षि भारद्वाज के यहाँ उस विद्या का अध्ययन करते रहे। वे मन और प्राण की सन्धि करके पृथ्वी के गर्भ में जाते थे और उसको भली-भांति जान लेते थे। भगवान राम अहिल्या का उद्धार करने वाले कहलाते थे।

भगवान राम प्रतिदिन लगभग एक सहस्र गायत्री का जाप करते थे। वह जाप शब्दों में नहीं अपितु मस्तिष्क में करते थे। उनका जीवन ऋषि जीवन था और उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न थी।

एक समय राम ने मार्ग में एक कीड़े को क्रीड़ा करते देखकर महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया कि महाराज! इस कीड़े ने क्या कर्म किया था, जो यह कीड़ा बना हुआ है? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि जब से यह सृष्टि आरम्भ हुई, यह कीड़ा तीन समय इन्द्र बना है। इन्द्र उसको कहते हैं जो राजा एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ कर लेता है। यह नाना प्रकार के पाप करके आज अधोगति को प्राप्त हुआ है और अब इसे कीड़े की योनि प्राप्त हो गई है।

भगवान राम का 35 वर्ष की आयु में माता सीता के साथ विवाह संस्कार हुआ था। वे 12 कलाओं में पारंगत थे। महान और सदाचारी थे। उनके लिए राष्ट्र का ऐश्वर्य और पर्वतों की शैय्या दोनों समान थी।

एक समय अयोध्या के भयंकर वन में महर्षि विभाण्डक मुनि के आश्रम में एक सभा हुई, जिसकी अध्यक्षता महाराजा शिव ने की। नाना ऋषि सभा में विद्यमान थे। उस सभा में यह विचार विनिमय हुआ कि हम रावण के आततायीपन को कैसे समाप्त कर सकते हैं?

ऋषि-मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र से यह कहा कि तुम राम और लक्ष्मण को धनुर्याग से महान बनाओ। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि मेरी विज्ञानशाला में जितने भी वरूणास्त्र हैं, और इन्द्रास्त्र हैं, इस कोष को राम को प्रदान कर सकता हूँ। महाराजा शिव ने कहा मैंने राजा रावण को भिन्न-भिन्न प्रकार की विज्ञान की शिक्षाएँ दी, परन्तु आज मेरा मन्तव्य बन गया है कि मैं रावण को कोई सहायता प्रदान नहीं करूँगा, क्योंकि उसका जीवन आततायी बन गया है। उसके राष्ट्र के प्रति मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। सभा में यह विचार-विनिमय निश्चित हो गया कि राजा रावण साधारण मानव को त्रासित कर रहा है, उसको समाप्त होना चाहिए।

महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अयोध्या से लाकर वन में धनुर्याग किया। जब याग समाप्त हो गया, तो राम और लक्ष्मण ने अस्त्र-शस्त्र लेकर ऋषि का स्वागत किया। इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण तीनों गमन कर, महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में जा पहुँचे। उन्होंने तीनों का स्वागत किया और महर्षि विश्वामित्र से कहा कि कहो भगवन्! मेरे लिए क्या सेवा है? आपकी क्या आज्ञा है? महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि इन दोनों को योग और विज्ञान में पारंगत कीजिए। दोनों भाई छः मास तक उस विज्ञानशाला में योग और विज्ञान की शिक्षा लेते रहे।

राम को महान बनाने के लिए महापुरुषों ने बहुत यत्न किया। सम्प्रदाय और रूढ़ि वैसे ही समाप्त नहीं होते। उस काल में समाप्त होते हैं जब मानव त्याग और तपस्या में परिणत हो जाता है। राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों ने रघुवंश को ऊँचा बनाने के लिए महर्षि भारद्वाज के आश्रम में सर्वविद्याएं प्राप्त की।

कुछ समय के पश्चात् राजा दशरथ महर्षि वशिष्ठ के द्वार पर पहुँचे और कहा कि मेरा चौथापन आ गया है, मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को यह राष्ट्र अर्पित करना चाहता हूँ।

इससे पूर्व अयोध्या में एक सभा हो गई थी, जिसमें सभी ऋषि-मुनियों ने यह निर्णय किया था, कि राम को वनों में जाना है और आतताईयों को नष्ट करना है। अतः उसी दिन ऋषि-मुनि, ब्रह्मचारीगण और नाना विदुषी देवियां एकत्रित हुए। यह निर्णय होने लगा कि राज्य में ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा है या राजसभाओं का। यह निर्णय हुआ कि ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ही ऊँचा होता है, क्योंकि उनके विचार तपे हुए होते हैं व सर्व अनुभव किया होता है।

अगला दिवस हुआ तो अयोध्या में मग्नता हो रही थी। राजगृहों में गान गाए जा रहे थे व सर्वत्र राष्ट्र में नाना प्रकार के आनन्द हो रहे थे। रात्रि में अभ्रेतु ऋषि महाराज, जो महर्षि वशिष्ठ के शिष्य कहलाते थे, मन्थरा के द्वार पर पहुंचे। मन्थरा अयोध्या राष्ट्र में गुप्तचर विभाग की अध्यक्षा थी। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ द्वारा लिखित एक पत्र मन्थरा को दिया और कहा इसे महारानी केकैयी को दे देना। मन्थरा ने वह पत्र केकैयी को प्रेषित कर दिया। केकैयी पत्र पढ़कर राजतिलक का विरोध करने लगी और कोपभवन में विद्यमान हो गई।

राजा दशरथ को जब यह प्रतीत हुआ तो वे शोक भवन में पहुंचे। मध्यरात्रि थी, उन्होंने कहा कि देवी! तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई है? राम को वन देना तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है क्योंकि तुम राम की ममतामयी हो। महारानी केकैयी ने कहा कि जहां कर्त्तव्य की भावना आती है तो वहां ममता समाप्त हो जाती है। मेरी अन्तर्भावना यह है कि राम को वन में जाना चाहिए।

यह सर्व वार्त्ता राम को प्रतीत हो गई कि मुझे वन जाना है। राम तपे हुए थे। कुछ तो माता के गर्भस्थल में तपे, कुछ माता की लोरियों में तपे, कुछ महर्षि वशिष्ठ व महर्षि विश्वामित्र के आश्रमों में तपे और कुछ महर्षि भारद्वाज के द्वारा तपे थे। कौशल्या जी भी यह कहती रहती थी कि हे बालक! तूने मेरे गर्भस्थल से जन्म पाया है, तो तेरा कर्त्तव्य है कि तू महापुरुष बन। तुझे दैत्यों को हनन करना है व महापुरुषों की सेवा करनी है। माता के हृदय के उद्‌गार बालक के अन्तःकरण में ओत-प्रोत हो गए थे।

राम का हृदय तपा हुआ था। राम जन्म-जन्मान्तरों से महापुरुष होते चले आए थे। वह दिव्य आत्मा वाले कहलाते थे। राम ने कोप भवन में जाकर माता केकैयी के चरणों को स्पर्श किया। केकैयी ने कहा, धन्य हो पुत्र! आज तुम मेरे द्वार आये हो, मेरी इच्छा है कि तुम चौदह वर्ष के लिए वन चले जाओ। राम ने कहा कि मेरी तो यह कामना रहती है मातेश्वरी! कि मुझे माताओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि मैं माता की आज्ञा का पालन नहीं करूंगा, तो मेरे पुत्र होने का अस्तित्व ही क्या है?

राम पिता के द्वार पर पहुँचे और कहा कि माता की आज्ञा का पालन करना तो पुत्र का कर्त्तव्य होता है। आप मुझे कर्त्तव्य से दूर क्यों ले जा रहे हो, आप शोकाकुल क्यों हो रहे हो व ममत्व में क्यों आ रहे हो? आप अपने मन में यह न स्वीकार करें कि 'राम' कौशल्या का ही पुत्र है। यदि माता केकैयी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ होता तो भी माता केकैयी मुझे वन जाने के लिए विवश कर देती। राजा दशरथ राम को अपने हृदय से आलिंगन करते हुए बोले कि हे पुत्र! मेरा हृदय नहीं चाहता कि तुम वन जाओ। राम का हृदय मोहवश नहीं हुआ। वह एक रस रहने वाली महान आत्मा थी।

कौशल्या जी को महर्षि वशिष्ठ कुछ उच्चारण करके पहले ही अपने आश्रम में चले गए थे। केकैयी व सुमित्रा को प्रणाम करके राम कौशल्या

के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या अति हर्षित हो रही थी, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राम राजसी विचारों में पनपता रहे। माता ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज का दिवस मेरे लिए शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है व मग्न हो रहा है। राम, लक्ष्मण और सीता ने राजसी वस्त्र त्याग दिये और भगवा वस्त्र धारण करके अयोध्या को त्याग दिया। तीनों सरयू नदी को पार करके भयंकर वनों में पर्वतों की शैय्या बनाने वाले बन गए।

राम, लक्ष्मण और सीता सबसे पूर्व राजा निषाद के राष्ट्र में पहुँचे। निषाद ने कहा कि भगवन्! आप राज्य त्याग करके वन को क्यों जा रहे हो? उस समय राम ने कहा था कि हे निषाद! सूक्ष्म-सा जीवन है और इस जीवन को ऊँचा बनाने के लिए संसार में आए हैं। वन में रहेंगे तो कुछ पायेंगे और राष्ट्र में रहेंगे तो अपनी निज सम्पत्ति खो बैठेंगे। संसार में जो भी मानव ऊँचा बना है, दार्शनिक, आत्मिक और वेदपाठी बना है, वह वन में रहने से बना है। वन में रहूँगा तो मेरा जीवन महान बनेगा, यौगिक बनेगा और संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊँगा। यदि मैं राजा बन जाता तो राष्ट्र बुद्धि हो जाती और न प्रतीत कितने पाप करने लग जाता? मैं वन को भोग कर, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके और मर्यादा को बांध करके, जहां से आया हूँ वहीं चला जाऊंगा।

राजा दशरथ ने जिन भीलों, द्रविड़ों और अपंगों को त्याग दिया था, भगवान राम ने उन्हीं को अपनाया। उनकी सेना बनाई। वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। आगे चले तो जो पिशाच और दुराचारी थे, उन्हें नाना प्रकार के यन्त्रों से नष्ट करते चले गए। उसके बाद बाली को नष्ट किया, जो चारों वेदों का पंडित था, परन्तु संस्कृति नष्ट कर चुका था। बाली ने अपने छोटे विधाता की पत्नी को अपने गृह में प्रविष्ट कर लिया था। पवनपुत्र हनुमान और सुग्रीव को अपनाया। शबरी कुरतुक ऋषि की कन्या थी और विज्ञान में प्रवीण थी। उसने भारद्वाज ऋषि के आश्रम में शिक्षा अर्जित की थी। उसने, जितना विज्ञान का कोष था, सब राम को प्रदान कर दिया था। एक समय भगवान राम भ्रमण करते हुए माता अनुसूया के आश्रम में पहुँचे। उसने सीता को उपदेश दिया और राम को एक यन्त्र दिया जिसका नाम 'जलायस्त्राण' था। यह यन्त्र अग्नि के परमाणुओं को निगल जाता था।

भगवान राम से वन में महर्षि कागकृष्ण (काग भुशुण्ड) मिले जो आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ना भी जानते थे। प्राणविद्या में पारंगत बाली पुत्र अंगद और वैज्ञानिक राजा जामवन्त से मिले। इस प्रकार अनेक ऋषि-मुनि और महापुरुषों को भी अपने साथ सम्मिलित कर लिया।

रावण की बहन का नाम सोमतिती (सूर्पणखा) था। वह दण्डक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने पहले राम और फिर लक्ष्मण के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। दोनों ने कहा हम तुमसे संस्कार नहीं कर पाएंगे। जब ऐसा कहा तो उसने अपमान समझा, क्योंकि उसे अपने विधाता रावण और राष्ट्र का गर्व था। अपमान होने से उसने अपनी नाक स्वयं काट ली। उसने षडयन्त्र रचा ताकि मेरे कुटुम्ब वाले मेरे अपमान को जानकर दोनों भाइयों को नष्ट कर देंगे। वेदों में कुछ मन्त्र आते हैं जिनके अनुसार देवकन्या को जिस वस्तु की हठ हो जाए अथवा जो कार्य इसके लिए असम्भव हो जाए तो वह स्वत: ऐसे कार्य कर लेती है।

इसी अपमान का बदला लेने के लिए रावण सीता जी को पंचवटी से उठा ले गया। राम ने रावण को नष्ट करके उसके भाई विभीषण को लंका का राजा बनाया। रावण के पुत्र नारायन्तक जो सोमभूम (रूस) नाम के राष्ट्र में राज्य करते थे, उसे नष्ट करके अद्युत नाम के राजा को वहां का राज्य देकर वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। उसके उपरान्त पातालपुरी पहुंचे, वहां रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था, उसे नष्ट करके पातालपुरी (अमेरिका) का राज्य हनुमान के पुत्र मकरध्वज को दे दिया। रावण का पुत्र अक्षय कुमार रोहिणी (चीन) राष्ट्र पर राज्य करता था। उसे नष्ट किया। रावण का चतुर्थ पुत्र मेघनाथ जो त्रिपुरी (काबुल व गन्धार) पर राज्य करता था उसे भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार वैदिक संस्कृति का सारे विश्व में प्रसार करके राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान अयोध्या लौट आए।

अयोध्या में आकर राम महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत हो गए। वहीं महर्षि विश्वामित्र भी आ गए। दोनों महापुरुषों के चरणों को छू कर राम ने कहा, "भगवन! अब आप मुझे कोई ऐसा निश्चित मार्ग दीजिए जिससे मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकूँ। अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूँ।" ऋषियों ने राम को उत्तम-उत्तम शिक्षाएं दी।

राम का दीपावली के दिन राज्याभिषेक किया गया। उन्होंने राम-राज्य स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय नियम बनाये। सबसे प्रथम नियम बनाया कि प्रत्येक गृह में यज्ञ होना चाहिए और सुगन्धि होनी चाहिए। प्रत्येक मानव में सदाचार और मानवता होनी चाहिए। द्वितीय नियम यह बनाया कि राष्ट्र में किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए।

राम के आदेश पर गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेजा गया, जो नदी तट पर था। स्वच्छ वायुमण्डल में विवेकी बालक लव का जन्म हुआ था। कुश नाम का बालक सीता जी को आश्रम के निकट कुशा के आसन पर रखा हुआ मिला था। दोनों बालक आश्रम में रहते हुए आयुर्वेद और अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत हो गए।

भगवान राम ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए, प्रचलन के अनुसार घोड़ा छोड़ दिया। घोड़े को किसी ने अंकित नहीं किया, परन्तु लव और कुश ने पकड़ लिया। वीर हनुमान और लक्ष्मण दोनों भ्रमण करते हुए आश्रम में आए। दोनों ने माता सीता से अयोध्या चलने की प्रार्थना की। दोनों बालक और माता सीता अयोध्या आ गए। सब ने राम के चरणों को स्पर्श किया। अश्वमेध यज्ञ में राम और सीता दोनों यजमान बने। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् सातवें दिवस माता सीता ने प्राणायाम करके शरीर त्याग दिया। उसके सात दिवस पश्चात् भगवान राम ने भी प्राणायाम करके अपने शरीर को त्याग दिया।

★ जो समाज में अच्छाइयों को उत्पन्न नहीं करता, वह समाज का ऋणी है।
★ जो राजा ऊँचे विचारों को स्वीकार नहीं करता, वह राजा राष्ट्र का ऋणी है।
★ देवता वह मनुष्य कहलाता है जो दूसरे जीवों की रक्षा करता है।
★ जब मानव की संकल्प शक्ति ऊँची बन जाती है तो उससे मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।
★ प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाले पामर कहलाते हैं।

महाराजा रावण

महाराजा रावण के बचपन का नाम वरूण था। वह स्वाति पुलस्त्य ऋषि का पौत्र था और उसकी दादी का नाम शकुन्तकेतु था। उसके पिता का नाम मणिचन्द केतु और माता का नाम प्रतिभा सुकुमान्जलि था। उसके दो भाई विभीषण और कुम्भकर्ण थे। उसकी एक बहिन थी जिसे सोमतिती और सूर्पणखा भी कहते थे।

तीनों भाइयों ने महर्षि शुकदेशवन्त के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की। वरूण ने अपने गुरू से दसों दिशाओं का ज्ञान प्राप्त किया, अत: 'दशानन' कहलाता था। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ध्रुवा, ऊर्ध्वा, उत्तर पूर्व, पूर्व दक्षिण, दक्षिण पश्चिम और पश्चिम उत्तर ये दस दिशाएँ होती हैं। इनके विज्ञान को जाना। विभीषण ने कर्मकाण्ड को जाना और जो कुम्भकर्ण कहलाता था वह परमाणु विद्या में रमण करने लगा।

राजा महिदन्त मही राष्ट्र के राजा थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सुरेखा था। उनकी पुत्री का नाम मन्दोदरी था। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार उसका विवाह वरूण के साथ हुआ। विभीषण का विवाह संस्कार भी राजा महिदन्त के पुरोहित की कन्या के साथ हुआ। कुम्भकरण का विवाह संस्कार आस्वानकेतु महाराज की कन्या के साथ हुआ। तीनों ही कन्याएं विदुषी थी।

विवाह के कुछ समय पश्चात् वरूण राजा महिदन्त के द्वार पर आए। महिदन्त को व्याकुल देखकर, वरूण ने कारण पूछा।

राजा महिदन्त ने कहा कि लंका का राष्ट्र भी मेरा था, जिसे कुबेर ने मेरे से लेकर स्वयं राजा बन गया है। दशानन ने कहा, आप व्याकुल न हों। मैं लंका को विजय करूँगा। विद्वान सर्वत्र पूज्य होता है। कई राज्यों से सेना एकत्रित की। उनकी सहायता लेकर लंका को विजय करने की घोषणा कर दी। वीर हनुमान के पिता राजा पवन जो महाराजा महेन्द्र के पुत्र थे, उनकी भी सहायता ली।

युद्ध से डरकर महाराजा कुबेर ने लंका को त्याग दिया। इस प्रकार बिना संग्राम के लंका विजय हो गई। महिदन्त ने लंका को वरूण को दहेज रूप में दे दिया और दशानन ने इसे स्वीकार कर लिया। सभी राजाओं की एक सभा एकत्रित की गई, जिसमें सर्वसम्मति से वरूण दशानन को राजा नियुक्त किया

गया। उसी सभा में वरूण का नाम रावण नियुक्त किया गया। जिसका अर्थ है दानी या बुद्धिमान। महर्षि कुक्कुट से रावण का राज्याभिषेक करने की प्रार्थना की गई। महर्षि ने रावण के मस्तिष्क का अध्ययन करके राज्याभिषेक करने से मना कर दिया। बहुत समय तक सभा शान्त हो गई। महात्मा भुंजु ऋषि खड़े हुए और दशानन रावण का राज्याभिषेक यह कहकर कर दिया कि इसे लंका प्राप्त हो गई है तो यह होना अनिवार्य है।

तीनों भाईयों के सात पुत्र थे। महर्षि भारद्वाज उन्हें शिक्षा देते थे। रावण के चार पुत्र थे—प्रथम अहिरावण, द्वितीय मेघनाथ, तृतीय नारायन्तक और चतुर्थ अक्षयकुमार। ये चारों बाद में क्रमशः पातालपुरी (अमेरिका), त्रिपुरी (अफगानिस्तान तक), रूस और चीन के राजा बने। विभीषण के दो पुत्र श्वात्रिकेतु और त्रेतकेतु थे। कुम्भकरण का एक ही पुत्र था जिसका नाम सुमेतकेतु था। सुमेतकेतु बाद में श्वेताश्वेतर ऋषि कहलाया।

प्रारम्भ में रावण उद्यम करके जीवन पालन करता था। राजा रावण का राज्य सर्वत्र व्याप्त होने लगा। इन्द्रजीत-मेघनाथ अपनी पत्नी सुलोचना को साथ लेकर मंगल की यात्रा करता था। कुम्भकरण भी अनेक लोकों की यात्रा करता था। रावण के हृदय में अपने पुत्रों की वैज्ञानिक उन्नति देखकर अभिमान छा गया। उसने विचारा उसका राज्य इतना शक्तिशाली बन गया है कि कोई भी मुझे स्पर्श करने वाला राजा संसार में नहीं है। समुद्र तट पर ही सम्पाति और उसके भाई गरूड़ का राज्य था, जिसे रावण ने अपने आधीन कर लिया। गरूड़ को जटायु भी कहा जाता था।

रावण के सेनापति का नाम दुग्ध था जिसके पुत्र का नाम खरदुषण था। उसके एक वैज्ञानिक स्वमानभानु की पुत्री सुरसा थी, जो भौतिक विज्ञान में पारायण थी। सुरसा अपने शरीर का आकुंचन करना जानती थी। सम्पाति से प्राप्त राष्ट्र को सुरसा को दे दिया। उसका राज्याभिषेक कर दिया और खरदुषण को उसका सेनापति बना दिया।

महाराजा शिव ने एक यन्त्र निर्मित किया था, जिसे लेने के लिए रावण ने प्रार्थना की। माता पार्वती, कार्तिकेय और गणेश के मना करने पर भी महाराजा शिव ने वह यन्त्र रावण को दिया। रावण ने वह यन्त्र लंका में जाकर अपने महल के स्तम्भ में नियुक्त कर दिया। वह यन्त्र रावण की संग्राम में सहायता करता रहता था।

राजा रावण की नास्तिकता की दशा बन गई। कुम्भकरण आलस्य और प्रमाद में परिणत हो गया। दोनों भाईयों का अन्नाद दूषित हो गया। प्रजा पर राष्ट्रीय कर लगा दिया। मांस तक का ऋण कर के रूप में लेने लगे। हीनता आने से लंका का राष्ट्र दूषित हो गया। रावण की बहन सोमतिती गुप्तचर विभाग में थी। वह अपने सौन्दर्य की आभा में कटिबद्ध रहती थी।

रावण चारों वेदों का ज्ञाता और वैज्ञानिक था उसे दैत्य और यवन की श्रेणी में गिना जाने लगा। भगवान राम, माता सीता व लक्ष्मण जब 14 वर्ष की वनवास की अवधि बिता रहे थे, तो वनवास के अन्तिम वर्ष में रावण की बहन दंडक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने राम को अपना पति चुनना चाहा। राम के मना करने पर उसने लक्ष्मण को विवाह-संस्कार करने के लिए कहा। जब सोमतिती अपने हठ से नहीं हटी तो लक्ष्मण ने क्रोध में कहा, 'क्या तुम्हारे माता-पिता व भाई नष्ट हो गए? उनसे कहो कि तुम्हारा संस्कार करा दें'। सोमतिती बहुत क्रोधित हुई और इसे अपना अपमान समझा। अपमान होने के नाते उसने स्वयं अपनी नाक काट ली। उसने षड़यन्त्र रचा और इसलिए रचा, जिससे इन दोनों भाईयों से अपमान का बदला ले सकें। कन्या को जब किसी वस्तु की हठ हो जाती है तो ऐसा कार्य वह स्वतः कर देती है। किसी का अपमान होना भी नाक-कान कट जाना है।

रावण वन में से ही माता सीता को उठा ले गया। रावण ने अपने भाई विभीषण को बुलाकर पूछा कि तुम नित्य प्रति 'ओ३म्' का जप करते हो। मैं राम से विजय पा सकता हूँ या नहीं। विभीषण ने माता सीता को लौटाने को कहा। रावण ने विभीषण को शत्रु कहा और लंका से बाहर जाने को कह दिया। राम ने विभीषण को शरण दी। विभीषण के बताने पर राम ने समुद्र तट पर अजयमेध यज्ञ किया जिसका ब्रह्मा रावण को ही नियुक्त किया गया था।

राम और रावण का युद्ध हुआ। रावण के पुत्रों और सम्बन्धियों को कई देशों में जाकर हराया गया। रावण बलवान और वैज्ञानिक था। राम में विज्ञान के साथ-साथ आत्मिक बल था। राम यह जानता था कि परमात्मा ने उसे शरीर, बड़ों की आज्ञा पालन और सेवा के लिए दिया है। राम ऊँचे योगी महान आत्मा थे, जिसने संसार में पुनः मर्यादा को विकसित किया। राम चरित्रवान व मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाए एवं ऊर्ध्व गति को प्राप्त हुए। रावण में चरित्र का अभाव था। अतः रावण का स्थान राम से निचले स्थल पर ही नियुक्त किया जाता है।

तपस्विनी माता अंजना

अंजना महाराजा महीवृत केतु की कन्या थी। उनका विवाह महाराजा महेन्द्र के पुत्र पवन के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात् अंजना अपनी सहेलियों के साथ बैठी थी, तो किसी सहेली ने पवन के प्रति हंसी-हंसी में कुछ अपशब्द कह दिये। पवन ने समझा कि ये शब्द अंजना ने कहे हैं। उसने अंजना को अपने राष्ट्र में ले जाकर अपने से अलग महल में छोड़ दिया। उसने घोषणा करके अंजना को दुहाग दे दिया। दुहागिन अंजना ने अपने आपको स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन कर लिया। धीरे-धीरे 12 वर्ष व्यतीत हो गए।

वरूण (राज्यभिषेक के पश्चात् राजा रावण) ने लंका के राजा कुबेर को विजय करने के लिए राजकुमार पवन को सहायता के लिए निमन्त्रण दिया। पवन ने अपनी सेना सहित गमन किया और जाते हुए सायंकाल होने पर मार्ग में एक नदी पर पड़ाव डाल दिया। रात्रिकाल में दो पक्षियों (चकवा-चकवी) को आवाजें करते सुन कर राजा पवन के हृदय में व्याकुलता हो गई। उन्होंने अपने मन्त्री से पूछा कि ये पक्षी आवाजें क्यों कर रहे हैं? मन्त्री ने कहा, "महाराज! परमात्मा के नियमानुसार ये दोनों पक्षी दिवस-भर एक साथ रहते हैं, परन्तु जब रात्रि आती है तो ये पक्षी एक-दूसरे से दूर रहते हैं। दूर रहने के कारण ये व्याकुल हैं।" महाराजा पवन के हृदय में विचार आया कि मैंने अपनी पत्नी को 12 वर्ष से त्याग रखा है। पवन सोच-सोचकर व्याकुल हो गया। व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि उसी समय रात्रिकाल में विमान पर विराजमान होकर अंजना के द्वार पर जा पहुंचा।

अंजना ने अपने पतिदेव को देखकर उसके चरणों को स्पर्श किया और कहा, "आइए भगवन! मैं तो हमेशा आपका गुणगान गाती रहती हूँ। आपने मुझे दुहागिन बना दिया, परन्तु उसके पश्चात् भी मैं आपका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ।" पवन ने कहा, "देवी! तुम धन्य हो। मैं वरूण की विजय की सहायता के लिए, अपनी सेना सहित यहां से गमन कर गया था। मार्ग

में से तुम्हारे लिए आया हूँ।" अंजना ने कहा, "मुझे तो आपने दुहागिन बना रखा है। अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर यहां आना चाहिए था। यदि आपको संग्राम में से आने में देर हो गई तो आपके माता-पिता मुझे इस गृह से निकाल देंगे।" पवन ने कहा कि मैं शीघ्र ही विजय प्राप्त करके अपने राष्ट्र में आ जाऊँगा। रात्रि में अंजना के साथ रहकर, प्रात: काल अपनी मुद्रिका का परिवर्तन करके पवन ने वहां से गमन किया और अपनी सेना के पास जा पहुँचा। पवन को लंका में कई महीने लग गए।

सन्तान को माता ही ऊंचा बना सकती है ओर कोई नहीं बना सकता। माता तपस्विनी होती है तो माता का गर्भाशय भी ऊंचा बन जाता है। जब हनुमान जी अंजना के गर्भाशय में थे तो माता कहा करती कि "बालक! तू संसार में वीर व महान बनना। पवन के माता-पिता ने अंजना को गर्भवती देखकर कहा कि इसने हमारा गृह कलंकित कर दिया है। राजा महेन्द्र ने कहा कि राष्ट्र का नियम है कि यदि कोई भी कन्या इस प्रकार कलंकिनी हो जाती है तो उसका काला मुख, काला सारथी, काले वस्त्र, काले घोड़े और काले ही रथ पर विद्यमान करके भयंकर वन में त्याग दिया जाता है या वह जहां कहती है, वहां त्यागा जाता है। अंजना ने प्रार्थना की और कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है। मैं दोष की पात्र नहीं हूँ। आपके पुत्र (पवन) संग्राम करने चले गए थे, परन्तु मार्ग में से वापिस लौटकर एक रात्रि मेरे पास विश्राम किया था।" पवन की माता जी ने ये वाक्य स्वीकार नहीं किये। अंजना ने पवन की दी हुई मुद्रिका भी दिखाई, परन्तु माता-पिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परिणाम यह हुआ कि अंजना ने कहा कि मेरे माता-पिता के गृह में मुझे छोड़ दीजिए।

काला सारथी अंजना को लेकर उसके माता-पिता के गृह में छोड़ने गया। जब राजा महीवृत केतु को पूर्ण घटनाक्रम का पता लगा तो उसने कह दिया कि अंजना को भयंकर वन में त्याग दो। इस प्रकार सारथी अंजना को भयंकर वन में त्याग कर रथ को अपने राष्ट्र में ले आया।

अंजना ने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा, "हे परमात्मा! यह क्या हो गया? मैं पापिनी तो नहीं थी, परन्तु पता नहीं कौन-सा भोग मेरे सामने आ गया? मेरे हृदय में कोई अपवित्रता भी नहीं थी। मैं अपने जीवन में सदैव शुद्ध और पवित्र रही हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य नितान्त रहा है और ब्रह्मचर्य

की गति भी ऊर्ध्व रही है।"

भयंकर वन में व्याकुल होती हुई अंजना एक कन्दरा में विद्यमान हो गई। सर्द ऋतु का काल था और सर्द वायु चल रही थी। थकी हुई अंजना निन्द्रा में तल्लीन हो गई। अगले दिन भयंकर वन की कन्दरा में हनुमान का जन्म हुआ। अंजना व्याकुल होकर कहने लगी कि हे बाल्य! तेरा जन्म राष्ट्र गृह में होता तो न प्रतीत क्या-क्या दान दिये जाते? तेरा कैसा भाग्य है? इस कजली वन में तुझे क्या पान करा सकती हूँ?

रात्रि होने पर अंजना व्याकुल होने लगी। इतने में अंजना के मामा ब्रीहिवृण ने अपने पुष्प विमान को उसी स्थली पर स्थिर किया। वे पर्वत माला पर भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि मध्य रात्रि में इस भयंकर वन में कौन व्याकुल हो रहा है? कोई स्पष्ट आवाज न सुनकर उसने उच्च स्वर में कहा, "अरे! कौन है?" अंजना ने कहा, "भगवन्! मैं हूँ। मेरा नाम अंजना है।" राजा ब्रीहिवृण ने अंजना को पहचान कर कन्दरा से बाहर किया और कहा हे पुत्री! मैं तुम्हें अपने गृह लिए जा रहा हूँ।

जब विमान उड़ा तो हनुमान जी अंजना के हाथों से फिसलकर (छूट कर) विमान से नीचे गिर गए। अंजना ने कहा, "हे मामा! मेरा पुत्र विमान से नीचे गिर गया है। वह तो समाप्त हो गया होगा।" विमान को नीचे उतार कर देखा तो हनुमान जी के मुख पर चोट लग गई थी। इसी कारण हनुमान जी की मुखाकृति कुछ बिगड़ गई थी। विमान में पुन: बैठकर अंजना अपने पुत्र सहित अपने मामा के राष्ट्र 'नौतनपुरी' में आ गई।

उधर महाराजा पवन कुबेर को विजय करके अपने राष्ट्र में पहुँचे तो अपनी माता जी से पूछा कि अंजना कहाँ है? माता जी ने कहा, "हे पुत्र! वह कलंकिनी हो गई थी। हमने उसे गृह से निकाल दिया और उसके पिता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया था। अत: उसे कजली वन में त्याग दिया गया।" पवन ने कहा, हे मातेश्वरी! यह तो महापाप हो गया है। अंजना निर्दोष है। पवन ने संकल्प कर लिया कि यदि अंजना मुझे मिल गई तो वापिस घर आ जाऊँगा अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को कजली वन में त्याग दूँगा। यह संकल्प करके वह राष्ट्र छोड़ कर चला गया।

अंजना ने अपने मामा से कहा, "हे मामा! मुझे मेरे पति के गृह में पहुँचा दीजिए। मैं वहीं सुशोभित होऊँगी। मेरे पति भी संग्राम से वापिस आ गये

होंगे। राजा ब्रीहिवृण अंजना और बालक हनुमान को लेकर पहुँचे तो सूचना मिली कि राजा पवन अंजना की तलाश में कजली वन में जा पहुँचे हैं। अंजना भी हनुमान को लेकर अपने मामा के साथ कजली वन में जा पहुँची।

राजा पवन भ्रमण करते हुए उसी स्थान पर जा पहुँचे जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था। वहाँ उन्हें अंजना को दी हुई मुद्रिका प्राप्त हो गई। उन्होंने सोचा अंजना तो नष्ट हो गई होगी। अत: अंजना के वियोग में समिधाएं एकत्रित करके प्राणों को त्यागने की तैयारी कर ली। अग्न्याधान करते ही जब शवयात्रा में परिणत होने लगे, इतने में ही अंजना भी जा पहुँची।

अंजना ने कहा, हे देव! यह क्या कर रहे हो? राजा पवन ने कहा, तुम्हारे वियोग में प्राणों का अन्त कर रहा था। दोनों का मिलन हुआ। हनुमान जी को लेकर दोनों कजली वन से अपने राष्ट्र में गए।

अंजना तपस्विनी थी। तपस्विनी के गर्भ में तपस्वी पुत्र का जन्म होता है। तप ही मानव को ऊँचा बनाता है। माताएं जब तपस्विनी बन जाती हैं तो यह समाज ऊँचा बन जाता है। यह राष्ट्र और संसार ऊँचा बन जाता है।

★ यज्ञ का रस स्वाहा है।
★ जब आहार पवित्र बनता है तो व्यवहार पवित्र बनता है।
★ जहाँ प्रीति नहीं होती, वहाँ धर्म नहीं होता।
★ द्रव्यपति वह होता है जिसके द्वारा मानवीय जीवन और दर्शन होता है।
★ आत्मा के प्रकाश से ही हम संसार के प्रकाश को दृष्टिपात करते हैं।
★ जिस काल में बुद्धिमान अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं, उस काल का नाम राम-राज्य कहा जाता है।
★ धर्म एक है, सम्प्रदाय अनेक।
★ अन्त:करण और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म का सबसे बड़ा लक्षण है।
★ सत्य को सत्य मानने या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।
★ अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करने को विवेक कहते हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण

योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म जन्माष्टमी के दिवस हुआ था। उनका जन्म राजगृह में नहीं अपितु राजा कंस के कारागार में हुआ। राजा कंस महाराजा उग्रसेन का पुत्र था। प्रसंग है कि एक समय कंस ने नारद मुनि से पूछा कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? नारद मुनि ने उत्तर दिया कि तुम्हारी जो बहन देवकी है, इसी के गर्भ से सातवीं सन्तान पैदा होगी, वह पुत्र होगा और वही तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा।

राजा कंस ने संकल्प कर लिया कि अपनी बहन की प्रत्येक सन्तान को जन्म होते ही नष्ट करूँगा और मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा। अत: उसने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को अपने कारागार में बन्दी बना लिया। जो भी शिशु गर्भ से उत्पन्न होता, उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कन्याओं को नष्ट करने लगा। जब सातवें की आशाकृति हुई तो राजा कंस के अत्याचारों से समाज में एक बड़ी क्रान्ति आई। क्रान्तिवादियों ने कहा इसने तो अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर दिया, यह हमें क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा?

राज्य की सारी प्रजा परमात्मा से याचना करने लगी कि हे प्रभु! देवकी के गर्भ से सातवां शिशु उत्पन्न होने वाला है, उसकी रक्षा कर। परमपिता परमात्मा ने प्रजा की आत्मा की ध्वनि स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जिस दिन श्रीकृष्ण जी का जन्म होने वाला था उसी दिन देवकी और वसुदेव यमुना पर स्नान करने जा पहुँचे।

वहां पर माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए। माता यशोदा ने कहा कि मैं गर्भवती हूँ, यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। उन दोनों का एक संकल्प हो गया। रात्रि में जब योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तो उस कारागार में जितने भी कर्मचारी थे वे सब गाढ़ी निद्रा में परिणत हो गये। जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा हो तो उसको संसार में कौन नष्ट कर सकता है?

योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का जन्म उल्टे पैरों हुआ। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके यमुना को पार करते हुए यशोदा के द्वार पर जा पहुँचे। उसी रात यशोदा के कन्या का जन्म हुआ। उसने उसे वसुदेव को अर्पित कर दिया। प्रात:काल होने से पूर्व वसुदेव ने कन्या ले जाकर देवकी को अर्पित कर दी।

दिवस होते ही कंस ने कहा कि पुत्र है या पुत्री है। सेवकों ने कहा कि पुत्री है। राजा कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस पश्चात् नारद पुन: आ गए। कंस ने नारद मुनि से कहा कि मैंने देवकी के सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है। नारद ने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का तो कारण बन गया है। वह पुत्र तो माता यशोदा के यहाँ पहुँच गया और वह नष्ट नहीं हो सकेगा। यह वाक्य कंस ने श्रवण किया तो उन्होंने योद्धाओं को समय-समय पर श्रीकृष्ण जी को नष्ट करने के लिए भेजा। वह कैसे नष्ट हो सकता था? महापुरुषों की महिमा अलौकिक होती है, उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनकी सब इन्द्रियों की प्रतिभा अलौकिक होती है। बचपन में ही श्रीकृष्ण जी ने अनेक योद्धाओं को नष्ट किया परन्तु वह स्वयं ज्यों का त्यों रहा।

राजा कंस के कारागार में माता देवकी सदैव गायत्री महामन्त्र का चिन्तन करती रहती थी और संकल्पवादिनी बनी रहती थी। वे माताएं महान होती हैं जिनका मन पवित्र होता है। जो अन्न कंस देता था उसको गायत्री माँ के अर्पण करके, शुद्ध संकल्प करके अर्थात् एक सौ एक बार गायत्री का पाठ करके पान करती थी। इसी कारण माता देवकी के गर्भ से योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने पूर्व जन्मों को भी भलीभांति जानता था।

गोकुल वासियों के गृहों में जितना भी दही और घृत होता था, वह राजा कंस के यहाँ 'कर' के रूप में जाता था। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि घृत और दही गृहों में ही रहना चाहिए, राजा के यहाँ इस प्रकार का 'कर' नहीं जाना चाहिए। अत: प्रजा ने 'कर' देना बन्द कर दिया।

बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण जी की इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह सब कार्य विद्वतापूर्वक करते थे। बचपन से ही सोलह कलाओं में पारंगत थे। नित्य-प्रति साधना के साधक रहते थे। वे जानते थे कि पृथ्वी में क्या-क्या है? अन्तरिक्ष में परमाणु क्या कर रहे हैं? उन्हें प्रकृति का पूर्ण ज्ञान था।

श्रीकृष्ण जी ने महर्षि सन्दीपन के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की। उन्हें सोलह

हज़ार वेद की ऋचाएं कंठस्थ थी, जिन्हें आलंकारिक रूप में गोपिकाएं कहा जाता है। वह एकान्त स्थान में वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे और गोपिका रूपी ऋचाओं से विनोद किया करते थे। वह हर समय वेद की ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी जिसे राधा, रूक्मिणी और सत्यभामा के नामों से पुकारा जाता था। उनकी पत्नी से प्रद्युमन नामक बालक उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उस महान जन्म-जन्मान्तरों के योगी ने बारह वर्ष तक अपने जीवन का अनुसन्धान किया। द्वापर के पश्चात् किसी ने अपने जीवन का ऐसा मन्थन नहीं किया। उनके एक-एक रोम से ऐसी ज्योति उत्पन्न होती थी जैसे सूर्य की महान किरणें होती हैं। अपने समय में बहुत बड़े बुद्धिमान, महान एवं विचित्र थे। वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे। उनकी ऐसी प्रबल आत्मा थी कि दूसरों की आत्मा उनके आत्मिक बल से प्रभावित होकर उनके ही आदेशों पर चलने लगती थी।

भगवान श्रीकृष्ण जी ने एक समय कहा था कि 'जिस समाज में गऊओं की रक्षा होती है वह समाज ऊँचा बन जाता है। वे मार्ग से आते, तो एक ध्वनि किया करते थे, ध्वनि नाद सुनकर गऊएँ प्रसन्न होकर दूध देने के लिए तत्पर हो जाती थी। जब दुधारू पशु प्रसन्न होकर दूध देता है तो वह बुद्धिवर्धक होता है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र में किसी पशु, पक्षी अथवा जीव का हनन नहीं होना चाहिए। राष्ट्र में गऊओं की रक्षा करना सबका परम कर्त्तव्य होता है। यदि पशु के हृदय में यह वेदना नहीं है कि मैं दुग्ध प्रदान कर सकूँ तो वह दुग्ध रक्त के तुल्य ही होता है।

भगवान श्रीकृष्ण वेद-मन्त्रों के गोपनीय विषयों को विचारते रहते थे। उनके ऊपर अनुसन्धान किया करते थे और अनुसन्धान करते-करते प्रकृति पर शासन कर लेते थे। प्रात:काल जब अन्तरिक्ष में तारा-मण्डलों का प्रकाश रहता था, उस समय अपने स्थान को त्याग देते थे और गायत्राणी छन्दों का पाठ करते थे। उसके पश्चात् यज्ञ करते थे और यज्ञ के ऊपर अनुसंधान किया करते थे। उनकी पत्नी उनसे निवेदन करती रहती कि महाराज! आप भोजन भी पान नहीं करते हो, सदैव ऐसे गोपनीय विषयों में संलग्न हो जाते हो कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। श्रीकृष्ण जी कहते—हे देवी! मैं क्या करूँ? यह जो वेदों का ज्ञान है, यह ऐसा गोपनीय विषय है कि मेरा हृदय प्रसन्न रहता है और

इसे त्यागने के लिए मेरी इच्छा नहीं होती कि आज मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूँ अथवा यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूर चले जाएं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने वेदों का अध्ययन करने से ही नाना प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया था। भौतिक विज्ञान में उनकी विलक्षण गति थी। उन्होंने एक यन्त्र जाना था जिसके द्वारा महाभारत युद्ध की जितनी भूमि थी उसको 'शृंगकेतु' नाम की रेखा से युद्ध क्षेत्र को सीमाबद्ध कर दिया था। जब संग्राम हुआ तो नाना प्रकार के परमाणुओं का प्रयोग किया गया, परन्तु उस रेखा में यह विशेषता थी कि जितना भी यौगिक यन्त्रों का प्रभाव होता था, जिनसे पृथ्वी पर विध्वंस हो सकता था, वह उस रेखा से बाहर नहीं जाता था। ऐसी ही रेखा को त्रेता काल में लक्ष्मण ने जाना था और माता सीता के चारों ओर स्थिर किया था।

श्रीकृष्ण जी ने मौनधुक नाम के यन्त्र को जाना जिसके छोड़ने से अन्तरिक्ष में रात्रि प्रतीत होती थी और सोमधुक यन्त्र जाना जिसके छोड़ने से रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता था। इन्हीं यन्त्रों द्वारा अर्जुन की सहायता करके उन्होंने जयद्रथ को नष्ट करवाया था। मंगल ग्रह की यात्रा करने के लिए सौकिक नामक यन्त्र भी निर्धारित किया था।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जी कुरूक्षेत्र युद्ध के नियन्ता एवं नीतिज्ञ थे। जैसी राजनीति देखी, जैसा समय देखा, उसके अनुकूल व्यवहार किया, यह केवल उन्हीं की योग्यता थी। महाभारत काल में भौतिकता बहुत बढ़ गई थी। नाना प्रकार के यन्त्र बन गए थे। महाराजा अम्बरीश के पास एक ऐसा यन्त्र था जिसके एक बार प्रयोग से ही नौ अक्षौहिणी सेना समाप्त करके यन्त्र वापिस उनके पास आ जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र थे जिनके प्रयोग से पृथ्वी में विशाल खड्डे हो जाते थे, बड़े-बड़े जलाशयों को सुखा कर भूमि में बदल देते थे। जहाँ भौतिक विज्ञान से ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण कर, एक-दूसरे को नष्ट करने की योजनाएं बनाई जा रही थी, वहाँ श्रीकृष्ण जी ऐसे महान योगी थे जिन्होंने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध को रोकने का यत्न किया, परन्तु जब कुछ न हुआ तब महाभारत का युद्ध कराया। युद्ध में श्रीकृष्ण जी, अर्जुन के सारथी थे। अर्जुन दोनों पक्षों को देखकर शोकातुर हो गए थे। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा था कि हे अर्जुन! यह मोह तुम्हें इस प्रकार क्यों आया है? कर्त्तव्य को जो मानव मोह के वशीभूत होकर त्याग देता है, उस मानव के यह लोक और

परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। अत: आज तुम शोकातुर न हो। अपने कर्त्तव्य को न त्यागो। आज जिनका तू मोह कर रहा है वे तो नष्ट होने ही हैं। श्रीकृष्ण के उपदेशों को सुनकर अर्जुन का अज्ञान दूर हो गया और युद्ध करने को तैयार हो गया। ये उपदेश ही 'भगवद्गीता' नामक ग्रन्थ में विद्यमान हैं। इस संग्राम में सब बुद्धिमान और वैज्ञानिक समाप्त हो गए। कुरूक्षेत्र का मैदान श्मशान स्थल बन गया। प्राणी मात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गए। कौरवों के कुटुम्ब में केवल एक नेत्रहीन धृतराष्ट्र रह गया और माताएं रह गई। पाण्डव पुत्रों ने विचारा अब हमें कहाँ गमन करना चाहिए।

कुरूक्षेत्र में एक सभा हुई जिसमें निर्णय लिया गया कि हस्तिनापुर चलें। जब गति करने लगे तो भगवान श्रीकृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके, चिन्तन करके बोले, 'आज गति नहीं करेंगे, हम कल हस्तिनापुर धृतराष्ट्र के समीप जायेंगे।' अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गए। अपने यन्त्रों में विद्यमान होकर उन्होंने एक लोहे का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर करके पुन: कुरूक्षेत्र आ पहुँचे। अगला दिवस आया तो पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ गए। जब धृतराष्ट्र से मिलने पहुँचे तो धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि मैं भीम को कण्ठ से ओत-प्रोत होना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण जी ने जान लिया। उन्होंने जो लोहे का भीम स्थापित किया था उसे पकड़ा कर कहा कि यह है भीम, तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। उस अन्ध धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को नष्ट कर दिया और भीम का जीवन बच गया।

श्रीकृष्ण जी महान परमयोगी थे जिन्होंने प्रभु की महत्ता को जाना था। आज के मानव ने उन्हें परमात्मा कहकर उनके महत्व को समाप्त कर दिया है। किसी भी महापुरुष को परमात्मा कहना असंगत है। भगवान शब्द का प्रयोग आदरसूचक है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा को जन्म धारण करने की क्या आवश्यकता है? परमात्मा तो निराकार रहते हुए भी जिस वस्तु की रचना कर देते हैं, उसका नाश भी वे निराकार होते हुए ही कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा तो निराकार होते हुए सर्वशक्तिमान भी है। अवतार यह नहीं होता कि परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके आ जाए अपितु अवतार उसे कहते हैं जो परमात्मा के निकट जाने वाली आत्मा हो। ऐसी आत्मा लोक कल्याण के लिए जन्म लेती है।

हज़रत ज़रदुश्त (पारसी मत)

महाभारत काल के युद्ध के पश्चात् वेदों का ज्ञान लुप्त होने लगा। वैदिक धर्म का ह्रास होने के पश्चात् लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व हज़रत ज़रदुश्त का जन्म हुआ। फरेदू के कुल में एक तपीर नाम का मनुष्य था। उसके पुत्र का नाम पूरशस्त था। पूरशस्त के पुत्र का नाम ज़रदुश्त था। इसकी माता का नाम दगदुइया था। पैदा होते ही यह हंसा था, अतः इसका नाम ज़रदश्त रखा गया। कहा जाता है कि उस समय के ईरान के शासक ने इसे मार डालने का यत्न किया था। परन्तु परमात्मा जिसे जीवन देता है, उसे कौन मार सकता है?

हज़रत ज़रदुश्त का महर्षि वेदव्यास के साथ शास्त्रार्थ भी हुआ था। इसी ने पारसी मत चलाया। इनकी लिखी पुस्तक जन्दावस्था में वेदों के मन्त्र मिलते हैं। यज्ञ करना पारसी मत में अत्यावश्यक है। यज्ञ कुण्ड को जिसे पारसी आतशकदा कहते हैं, इसमें हर समय आग जलती रहती है। इस अग्नि में अच्छे-अच्छे पदार्थ डालकर, खुशबु करते रहते हैं। यज्ञोपवीत पहनने का भी इस मत में विधान है। इस मत वाले मानते हैं कि जो ऐसा नहीं करेगा, वह नरक में जायेगा।

पारसियों को आतशप्रस्त कहा जाता है। जिन्दावस्था पुस्तक को संसार के कल्याणार्थ मानते हैं। ये यह भी मानते हैं कि ज़रदश्त पर ईमान लाये बिना स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

हज़रत ज़रदुश्त ने वेद का वाक्य "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" का तर्जमा करके अपना मुख्य मन्त्र बनाया है। वह तर्जमा (अनुवाद) है "नेस्त एजद दिगर यजदां" यानि परमात्मा के सिवाय कोई परमात्मा नहीं है। इसका ही अरबी भाषा में यह अनुवाद है—"ला इला इल लिल्लाह" किया गया है।

हज़रत ज़रदुश्त खेती-बाड़ी पर बहुत ज़ोर देते थे। सबको अपनी आजीविका के लिए कृषि करनी चाहिए। बादशाह गश्ताशप इसका शिष्य बन गया था। जरदश्तसीस्तान में 'खरानूरनरक' नामक मनुष्य ने इनको तलवार से मार दिया था।

हज़रत मूसा (यहुदी मत)

लगभग 3500 वर्ष पूर्व हज़रत मूसा का जन्म फिलिस्तीन देश में हुआ था। इनको मुक्तिदाता मानने वाले यहुदी कहलाते हैं। बचपन में हज़रत मूसा भेड़-बकरियाँ चराया करते थे। एक दिन इन्होंने भेड़-बकरियों को चराते हुए तूर पर्वत पर अग्नि जलती हुई देखी। पर्वत के पास चढ़कर अग्नि के पास चले गये। यहुदियों का मानना है कि अग्नि में से परमात्मा ने इनसे बातचीत की और इनको अपना पैगम्बर नियुक्त किया। इस बात को एक शायर ने लिखा है—

"खुदा की देन का मूसा से पूछिए अहवाल।
आग लेने जाएँ और पैगम्बरी मिल जाय।।"

पहाड़ से उतरकर हज़रत मूसा ने लोगों में प्रचार आरम्भ कर दिया। उसने कहा कि ईश्वर ने दस सिद्धान्तों का प्रचार करने की आज्ञा दी है, जो मूसा के दस हुक्म कहे जाते हैं और निम्नलिखित हैं:—

1. खुदा ने फरमाया तेरा खुदा मैं हूँ, तू गैर को पूजनीय न मानना।
2. अपने लिए कोई तराशी हुई मूरत न बनाना, तू उनके आगे सजदा न करना और न इबादत करना।
3. तू खुदाबन्द अपने खुदा का नाम बेफायदा न लेना।
4. याद करके तू सबत का दिन पाक मानना।
5. तू अपने माँ और बाप की इज्जत करना।
6. तू खून न करना।
7. तू ज़ना न करना।
8. तू चोरी न करना।
9. तू अपने पड़ोसी के ख़िलाफ झूठी गवाही न देना।
10. तू लालच न करना।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् वेद-विद्या लुप्त होती गई। वाममार्गी अपना प्रचार करने लगे। मनुष्य कृत ग्रन्थों का प्रचार होने लगा। परन्तु वैदिक धर्म

के सिद्धान्त किसी न किसी रूप में कायम रहे। अत: यह बात कि अग्नि में से परमात्मा ने बात की, वैदिक सिद्धान्त को सिद्ध कर रही है। वैदिक साहित्य में अग्नि परमात्मा का भी नाम है। ऋग्वेद का पहला मन्त्र है—"**ओ३म् अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।**"

अग्नि रूप परमात्मा ने हज़रत मूसा को जो आज्ञा दी लगभग वेदानुकूल है। साहित्य में बाद में दूषितपन, स्वार्थी लोगों के कारण आ गया हो सकता है। आप यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि यहुदी लोग हवनकुण्ड और वेदी बनाकर हवन करते हैं।

हज़रत मूसा का जब जन्म हुआ, भारतवर्ष में वाममार्ग का पूरा प्रचार था। इसी प्रचार का प्रभाव मूसा पर भी पड़ा होगा। तभी वाममार्गियों की तरह यहुदियों में भी, हवन में पशु-बलि की प्रथा प्रचलित हो गई।

वाममार्गियों का फैलाया हुआ पाखण्ड, अशिक्षा और अन्धविश्वास मानवता के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ है।

★ मानव में ज्ञान और विवेक का अभाव ही अन्धकार कहलाता है।
★ अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश कहते हैं।
★ मानव का जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है।
★ जब द्रव्य का दुरुपयोग होता है तो यह द्रव्य उसी मानव के पुण्य को निगल जाता है।
★ राष्ट्र का सबसे बड़ा भूषण सदाचार है।
★ राष्ट्र का निर्माण धर्म की रक्षा करने के लिए किया जाता है।
★ जब मानव का पुण्य उदय होता है तो मानव का विकास होता चला जाता है।
★ जब मानव के समक्ष पाप आता है तो वह अधोगति में चला जाता है।
★ जहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है, वहाँ स्वार्थ होता है।

हज़रत ईसा मसीह (ईसाई मत)

हज़रत ईसा बाल ब्रह्मचारी थे। मती की अंजील में उन्होंने कहा है कि जो मुझे प्रभु कहता है, वह स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा। फिर आगे कहा है कि प्रत्येक मनुष्य को कर्मानुसार फल मिलता है। योहनना की अंजील में अपने आपको परमात्मा का पुत्र भी कहा है, फिर लिखा है, ईश्वर अद्वैत है। लूका की अंजील में लिखा है, "तुम मुझे उत्तम क्यों कहते हो, सिवाय परमात्मा के कोई उत्तम नहीं।" इस प्रकार कई प्रकार की पुस्तकों में अलग-अलग चरित्र दिखाया गया है।

वास्तव में हज़रत ईसा मसीह का भारत में शिक्षा प्राप्त करना भी लिखा गया है। काशी में उनके गुरु का नाम आचार्य विरंडी था। इनसे आयुर्वेदाचार्य की शिक्षा प्राप्त करके विदेशों में प्रचार किया। हज़रत ईसा मसीह ने भूत-प्रेत को भी माना। मानसिक रोगियों को यह कहते थे, कि उन्हें भूत-प्रेत चिपटे हुए हैं। अत: उनके शिष्य भी भूत-प्रेत के जाल में फसते गए। ईसाई मत में इस प्रचार का ही फल है कि यूरोपीय देशों में, जो समृद्ध देश हैं, अपने आपको विकासशील देश कहते हैं, वहाँ भूत-प्रेत को माना जाता है।

अमेरिका आदि देशों के बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी इतनी उन्नति होने पर भी इस बीमारी से ग्रसित हैं। बचपन में ही बच्चों में यह भ्रम डाल दिया जाता है, जो सारी आयु उनके दिमाग से निकलता ही नहीं है। मार्टिन लूथर जैसे सुधारक भी इस अन्धविश्वास से बाहर नहीं निकल सके।

आजकल भी यूरोप के देशों में आध्यात्मिकता के नाम पर भूत-प्रेत का प्रचार बड़ी तेजी से किया जा रहा है। इस विषय में समाचार-पत्र निकाले जाते हैं और सभाएं भी की जाती हैं। करोड़ों पढ़े-लिखे लोग इस भ्रमजाल में पड़कर अपना जीवन दुखी बना रहे हैं। इसका प्रचार हज़रत ईसा के मानने के कारण अधिक फैला है।

हज़रत ईसा को उनके ही एक शिष्य ने जिसका नाम अस्करयुति था, लालच में फसकर अपने गुरू को गिरफ्तार करवा दिया। उन्हें फाँसी की

सजा सुनाई गई। हज़रत ईसा मसीह का ईश्वर विश्वास, फाँसी पर डोल गया था, और कहा था कि "ईश्वर! आपने मुझे क्यों त्याग दिया?" ये लोग नहीं जानते कि मेरे साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं?

हज़रत ईसा मसीह को जब सलीब पर लटकाया गया तो आँधी का तुफान आ गया। सभी वहाँ से भागने लगे। ईसा के शिष्यों ने सलीब से उन्हें उतारा, तो वे जीवित थे। उन्हें लेकर किसी गुप्त स्थान पर उनका ईलाज किया गया। पूर्ण स्वस्थ होने के पश्चात् ईसा मसीह किसी प्रकार से बचते हुए भारतवर्ष के कश्मीर में आ गए। इस प्रकार उनका स्वर्गवास कश्मीर में ही हुआ। कश्मीर में ईसा मसीह की समाधि बनी हुई है।

ईसा सदाचारी व ब्रह्मचारी थे, तथापि वे दार्शनिकता में अधिक पहुँचे हुए नहीं थे। उन्होंने सदैव एक आदेश दिया कि विचारों से, नम्रता से तुम किसी को धार्मिक बना सकते हो। उनके अनुयायियों ने आज तक ऐसे कार्य नहीं किए कि मुहम्मद के अनुयायियों की भांति संग्राम करके, कन्याओं को भ्रष्ट किया हो, राजनीति की बात दूसरी है।

ईसा ने एक वाक्य बहुत ऊँचा कहा है कि संसार में मानव को ब्रह्मचर्य व्रत से रहना चाहिए, तथा ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बना लेनी चाहिए। उन्होंने अपने सदाचार के ऊपर अटल रहने के लिए तथा सेवक बनने के लिए बड़ा बल दिया है।

ईसा ने इस भारत-भूमि पर आकर नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया था। आयुर्वेद की विद्या का पठन-पाठन, उनके अध्ययन का मौलिक विषय था। वे ही मौलिक विचार समुद्र पार जाकर, अपना कार्य करते रहे, किन्तु उनके मौलिक विचारों का परिणाम यह हुआ कि उनके राष्ट्र में उनके सम्प्रदाय की परम्परा का प्रसारण हुआ और वह रूढ़ि बन गया।

यथार्थ क्रान्तिकारी ईसा—ईसा को जब यहुदी नष्ट करने लगे, तब उन्होंने कहा कि मुझको नष्ट कर सकते हो, परन्तु मेरी जो यथार्थक्रान्ति है, आत्मविश्वास है, उसे छेदन नहीं कर सकते। महात्मा ईसा, जहाँ महाराजा हरिश्चन्द्र, अपने राष्ट्र को त्याग करके गंगा के तट पर रहे थे, उस नगर काशी में, दस वर्ष तक विद्या अध्ययन करके यहाँ से गए थे। उन हूण जाति के लोगों ने उन्हें अपनाने का प्रयास किया था।

हज़रत मुहम्मद

हज़रत मुहम्मद का जन्म सन् 971 में सोमवार के दिन प्रातः अरब सागर के नगर मक्का में कुरैश कबीला में हुआ। पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम आमना था। पिता इनके पैदा होने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हुआ और माता 6 वर्ष की आयु में ही इन्हें छोड़ कर चली गई। दादा अब्दुल मतलब ने इन्हें पाल-पोष कर बड़ा किया। इनका खानदान पक्का मूर्ति पूजक था और मक्का के मन्दिर का पुजारी था।

बचपन में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके। प्रारम्भ के जीवन में भेड़-बकरी चराते रहे। 20 वर्ष की आयु में एक खदीज़ा नामक, धनवान स्त्री के यहाँ नौकरी करने लगे। फिर इसी महिला से जो लगभग 40 वर्ष की थी, विवाह कर लिया। इस प्रकार धनी व्यक्ति हो गये।

पढ़े-लिखे नहीं होने के कारण, पारसियों, यहुदियों और ईसाई मत की वार्त्ता सुनकर कुछ आयतें, अपने साथियों से लिखवाकर, उसका नाम कुरान रखते थे। धीरे-धीरे कुछ लोगों का गिरोह बनाकर, अपनी सेना बनाने लगे।

उस समय समाज में कुछ बुराईयाँ व्याप्त थी, जिसको इन्होंने विरोध किया। मदिरा पान और ब्याज लेना, इन दोनों से लोगों को दूर रहने को कहा। अपने साथियों से सभी मतों की कुछ आयतें लिखवाकर, रात के अन्धेरे में, कुछ मील की दूरी पर, एक पेड़ की खोखर में रखवा दिया। प्रातःकाल लोगों में यह समाचार फैला दिया कि मुहम्मद को रात के स्वप्न में खुदा के दर्शन हुए हैं। खुदा ने यह भी बताया कि कुछ मील की दूरी पर पेड़ की खोखर में एक पुस्तक है, जिसमें परमात्मा (खुदा) का आदेश लिखा है, जबकि यह पुस्तक स्वयं मुहम्मद ने ही रखवाई थी। इसी पुस्तक का नाम कुरान रखा गया। इसके आदेशों का पालन करना सबके लिए आवश्यक था। जो इन्हें नहीं मानता था, उसे काफिर कहते थे। इनके साथियों और शिष्यों ने अनेक अत्याचार किये।

हज़रत मुहम्मद ने 13 विवाह किये। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्होंने

अपने गोद लिए पुत्र की (जैद की) बीबी जैनब से भी विवाह कर लिया था। इन्होंने अल्पायु कन्याओं से भी निकाह किया था। खुदा के हुक्म को बदलने वाला समझते थे। खुदा को आसमान पर बैठा हुआ मानते थे।

इन्होंने लोगों को बताया कि मैं सातों आसमानों का और स्वर्ग नरक की सैर करके आया हूँ। खुदा ने स्वयं मेरी पीठ पर हाथ रखा था। कहते थे जो कुरान को न माने, वह काफिर है और वध कर डालने योग्य है।

हज़रत मुहम्मद ने वृद्ध विवाह और बाल विवाह दोनों किये। अपनी मालिक जो इनसे लगभग दुगनी थी, उससे निकाह किया। स्वयं लगभग 50 वर्ष की आयु में 16 वर्ष की लड़की आयशा से निकाह किया।

सगोत्र, सकुटुम्ब और चचेरे भाई व बहनों का विवाह उचित बताया। अत: मुस्लिमों में यह कुरीति आज तक चली हुई है। मुहम्मद मांसाहारी थे और मद्य पीने का दोष भी इन पर धरते हैं।

कभी काबे की ओर और कभी यहुदियों के बेतुल मुकद्दस की ओर को मुख करके नमाज़ पढ़ना बताते थे। इन दोनों स्थानों को खुदा का घर ठहराते थे। इन्होंने चाँद के दो टुकड़े होने बताये और खुदा की कसमें दिलवाते थे।

अन्तिम समय में मरते हुए, आयशा-आयशा करते हुए, आयशा की गोद में ही प्राण त्याग दिये।

मुहम्मद ने कहा था कि संसार में प्रेम-प्रीति से रहना चाहिए। रूढ़ियों और कुरीतियों को त्याग देना चाहिए। परन्तु उनके अनुयायियों में यह गुण कहाँ तक हैं? उनमें कितनी प्रीति, कितना स्नेह है तथा कितना मानवता को लाने का प्रयत्न करते हैं? कितना अपनत्व को ऊँचा बनाने का प्रयास करते हैं, तो निराशा ही हाथ आती है? इनका तो एक ही नाद रहता है कि सब संसार यवन हो जाए। यवन के अतिरिक्त कोई प्राणी न रहे। यह विचार कोई सुन्दर नहीं है क्योंकि यह उनके स्वयं के सुकृतों को नष्ट कर देता है तथा उनकी उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है।

मुहम्मद ज्ञान में अधूरे थे, क्योंकि पढ़े-लिखे नहीं थे। भोग-विलास में सदैव परिणित रहते थे। इनको राष्ट्रीय विचारधारा बड़ी प्रिय थी। राष्ट्र में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, अच्छाइयों का साम्राज्य हो, वह कार्य नहीं होने चाहिए, जो मानव को राष्ट्र में क्षीण बनाएं। दूसरों के चरित्र पर आक्रमण नहीं करना चाहिए।

आज मुहम्मद के अनुयायी भी सुगन्धि चाहते हैं, दुर्गन्धि नहीं। उन्हें सुगन्धि देने का प्रयास करना चाहिए और उनसे कहना चाहिए कि यज्ञ तो सुगन्धि है, इससे वायुमण्डल पवित्र होता है।

मुहम्मद के मानने वालों ने नाना प्रकार के अपराध किये। दूसरे धर्म के मानने वालों की कन्याओं को मृत्युदण्ड देकर अपना प्रभुत्व लाने का प्रयास किया। यह यवन सम्प्रदाय शीघ्र ही समाप्त होने वाला है। इसका कारण यह है कि विज्ञान की धारा के आगे इसका कोई मूल्य नहीं। यह एक ऐसा समाज एकत्रित हो गया, जो दूसरों के चरित्र को भ्रष्ट करते हैं तथा अपने जीवन को सुन्दर नहीं बनाते। कुछ वर्ष पश्चात् इसका केवल पोथियों में ही उच्चारण होगा, इसका मानने वाला कोई न होगा। आज जब मानव चन्द्रमा पर पहुँच गया है, तो वे कहते हैं कि चन्द्रमा पर मानव पहुँचा ही नहीं। क्योंकि उनकी पोथियों में यह विद्या नहीं है।

आज जितनी कुरीतियाँ तथा दुराचार हैं, ये सब मुहम्मद के मानने वालों ने फैलाए तथा राष्ट्र के राष्ट्रों को भ्रष्ट किया। आज जब इनका कोई ब्रह्मचारी विज्ञान में जाता है, तो वहाँ इनकी वह पोथी नहीं रहती। यवनों में ईश्वर का एक ही वास्तविक प्रकार न रहा। यदि होता तो दूसरों की कन्याओं का भ्रष्ट करने का इनका साहस न होता। यह दु:साहस केवल ईश्वर के न मानने वालों में ही होता है। जिस गृह को यवन खुदा का घर उच्चारण करते हैं, उनमें दूसरों को नष्ट करने की योजनाएं बनती हैं, राष्ट्र के विद्रोह की वार्त्ता प्रकट हो जाती है। जो दूसरों की पुत्रियों व पत्नियों को नष्ट करने वाला गृह हो, वह प्रभु का घर नहीं है, कायरों और अपराधियों का गृह है। इन पर आधिपत्य करके उनमें शिक्षालय बना दें, क्योंकि इनसे राष्ट्र और समाज की हानि हुआ करती है। मुहम्मद ने धर्म को व्यापक न मानकर राष्ट्र को व्यापक माना।

★ विकल्प का कोई आदि और अन्त नहीं होता।
★ संकल्प नाम परमात्मा का और विकल्प नाम प्रकृति का है।
★ मन और प्राण के समन्वय का नाम योग है।

स्वामी महावीर

वर्धमान महावीर जैन मत के संस्थापक और 24वें तीर्थंकर माने जाते हैं। इनका जन्म का नाम वर्धमान था। वह क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था। इनका जन्म महात्मा बुद्ध से 25 वर्ष पूर्व अब से लगभग 2575 वर्ष पहले बिहार प्रान्त के कुण्ड ग्राम में हुआ था। इनको भी बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु देखकर वैराग्य होता गया। इनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था। 30 वर्ष की आयु में गृहस्थ जीवन को त्यागकर वन में तपस्या करने चले गए।

इनके समय में वाममार्ग जोरों पर था, यज्ञों में पंडित पशुओं की बलि देने लग गए थे। अशिक्षा, पाखण्ड और दुराचार समाज में व्याप्त थे। इससे इनके मन को आघात लगा। इन्होंने 12 वर्ष तक कठिन तपस्या की और अहिंसा को परमधर्म मानकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास करने लगे।

इस प्रकार वह महावीर, जिन व महान विजेता कहलाने लगे। इनके सम्प्रदाय का नाम जैन सम्प्रदाय पड़ गया। इन्होंने मगध और आसपास के इलाकों में जैन मत का अधिक प्रचार किया। किसी भी प्राणी अथवा जीव की हिंसा नहीं होनी चाहिये। सबको जीने का अधिकार है। किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं होना चाहिए। ऐसा मानकर आजीवन प्रचार करते रहे।

74 वर्ष की आयु में जिला पटना के पावर नामक स्थान पर इनका दीवाली के दिन स्वर्गवास हो गया। महावीर स्वामी वेद व उपनिषद नहीं पढ़े थे। समाज में पंडितों द्वारा फैलाई गई कुरीतियों को देखकर उनका आत्मा और परमात्मा में विश्वास नहीं था। अत: वह न तो परमात्मा को मानते थे और न ही वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। हमेशा तप, त्याग और प्रायश्चित करने की शिक्षा दिया करते थे।

महावीर स्वामी जन्म से जाति-पाति को नहीं मानते थे। छूआछात के घोर विरोधी थे। अहिंसा पर बहुत अधिक बल दिया करते थे। इसलिए जैन साधु

नंगे पाँव चलते हैं और मुँह पर पट्टी बाँधे रहते हैं।

जैन मत दो भागों में बट गया है। एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। दिगम्बर लोग तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियों की पूजा करते हैं। मूर्ति पूजा जैनियों से ही अधिक प्रचलित हुई है। दूसरे सफेद कपड़े पहनते हैं और अपनी मूर्तियों को भी सफेद कपड़े पहनाते हैं। ये नंगे रहना बिल्कुल अनुचित समझते हैं। नंगे रहने वाले जैनी साधुओं का अलग मत बन गया है।

महावीर स्वामी के प्रचार से क्षत्रिय राजाओं ने शस्त्र त्याग दिये और पूर्ण अहिंसक बन गये, जिससे देश को बहुत हानि उठानी पड़ी।

★ जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ विनाशिता होती है और जहाँ विनाशिता होती है वहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।
★ राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है।
★ राष्ट्र में यज्ञ-कर्म होना ही राष्ट्र की शान्ति है।
★ राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा।
★ राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए।
★ मिथ्या उच्चारण करने से मानव की आन्तरिक प्रतिभा नष्ट हो जाती है।
★ धर्म और मर्यादा मानव के चक्षुओं में विराजमान होती है।
★ वेद-मन्त्रों की पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है।
★ जो समाज में अच्छाईयाँ ला देता है, वह आर्य कहलाता है।
★ धर्म व्यापकता को कहते हैं और अधर्म संकीर्णता को।
★ हृदय रूपी गुफा में ही तो प्यारा प्रभु ओत-प्रोत है।
★ विवेक में मान-अपमान नहीं होता।
★ प्राणायाम मन को आत्मा के साथ बाँधने वाली रस्सी है।
★ रूढ़ि का पनपना ही राष्ट्र में रक्त का बहना है।
★ आत्मा जब शरीर में आता है तो नग्न आता है और जब जाता है तो नग्न जाता है।
★ वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

महात्मा बुद्ध

महात्मा बुद्ध कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के घर लगभग 2550 वर्ष पूर्व पैदा हुए। उनका जन्म का नाम सिद्धार्थ था। उनका पालन-पोषण राजकुमारों की तरह हुआ। अस्त्र-शस्त्र चलाने की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। परन्तु उनके मन में बचपन से ही उदासीनता छाई रहती थी। किसी बीमार व्यक्ति को देखते, तो सोचने लगते, क्या मैं भी बीमार हो जाऊँगा। एक दिन उसने एक मृत व्यक्ति को, व्यक्तियों को शमशान ले जाते हुए देखा। लोग विलाप करते हुए जा रहे थे। सिद्धार्थ के मन फिर प्रश्न उठा कि क्या मैं भी एक दिन मर जाऊँगा? मृत्यु से बचने का उपाय मन में आया। इस प्रकार वैराग्य की भावना बचपन में ही प्रबल होने लगी।

राजा शुद्धोधन को जब सिद्धार्थ के वैराग्य-भावों का पता लगा, तो 18 वर्ष की छोटी आयु में ही सिद्धार्थ का विवाह कर दिया। परन्तु भिन्न-भिन्न अवसरों पर रोगी, बूढ़े और मृत व्यक्ति देखने को मिलते रहे। इस प्रकार वैराग्य के भाव ताजा होते रहे। विवाह के दस वर्ष पश्चात् उनके घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। जब सिद्धार्थ को पुत्र होने का समाचार मिला तो कहा, "अरे बन्धन और भी दृढ़ हो रहे हैं।" अत: 28 वर्ष की आयु में, रात के अन्धेरे में राजमहल से निकलकर, वनों में चले गए।

घर से निकलकर, ज्ञान की खोज में, अनेक साधु-सन्यासियों और विद्वानों से सत्संग करते रहे। परन्तु आत्मिक शान्ति नहीं हुई। फिर 6 वर्ष तक गया नगर के पास उरूवेला नामक वन में कठिन तपस्या की। लगातार व्रतों के कारण सूख कर काँटा हो गये। मन को शान्ति फिर भी नहीं मिली।

फिर कठिन तपस्या और व्रतों को त्याग कर एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गए। 50 दिन तक वहीं ध्यान-मग्न होते रहे। अन्त में इसी वृक्ष के नीचे, जिसे बोधि वृक्ष कहते हैं, ज्ञान का कुछ प्रकाश मिला। उसी दिन से इनका नाम 'बुद्ध' हो गया और धर्म प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।

महाभारत-काल के पश्चात् अशिक्षा, पाखण्ड और अन्धविश्वास, लोगों में फैल चुका था। वाम मार्ग चरम सीमा पर था और यज्ञों में भी स्वार्थी लोगों ने हिंसा प्रारम्भ कर दी थी। ऐसे काल में वेद और उपनिषदों की आर्ष विद्या को लोग भूल चुके थे, जिसे पढ़े बिना आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का ज्ञान होना असम्भव है। महात्मा बुद्ध ने भी आर्ष शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, अत: परमात्मा को और आत्मा व प्रकृति को नहीं जान सके।

महात्मा बुद्ध ने धर्म के नाम पर चल रही हिंसा का पुरज़ोर विरोध किया। अहिंसा परमोधर्म भी वेद-शिक्षा का एक अंग है, जिसे लेकर बुद्ध चले। अपने प्रचार काल में महात्मा बुद्ध काशी में पधारे, तो काशी के पंडितों ने, उनको शास्त्रार्थ में जीतने का उपाय न देखकर, एक स्त्री को, उनका सत्यव्रत भंग करने भेजा। परन्तु पण्डितों की यह चाल वृथा गई, क्योंकि बुद्ध के सत्संग में, वह स्त्री, महात्मा बुद्ध की शिष्या बन गई।

एक स्थान पर महात्मा बुद्ध प्रचारार्थ गए। एक व्यक्ति वहाँ आकर गालियाँ देने लगा। बुद्ध गालियाँ सुनते रहे और मुस्कराते रहे। जब व्यक्ति कहने लगा कि आपने मुझे, पहले गाली देने से क्यों नहीं रोका? बुद्ध ने कहा कि जब तक तुम्हारे अन्दर गालियाँ भरी थी, तब तक उपदेश के लिए स्थान नहीं था। अब तुम्हारा भीतर गालियों से खाली हो गया है, अत: उपदेश की जगह बन गई है।

महात्मा बुद्ध ने अपने ग्रन्थ धम्मपद में अविद्या से सबसे बड़ी मलीनता का नाम दिया है। वेद भी संसार का मूल बीज अविद्या को मानता है। बौद्धों और जैनों ने आदि ग्रन्थ संस्कृत में न होकर पाली भाषा में लिखे गए हैं। पाली भाषा बिहार राज्य में प्रचलित भाषा थी।

धम्मपद में लिखा है:—

"ततो मलामल तर अविद्या परं मलं,
एतं मलं पलत्वा न नमल होथ भखुओ।"

अर्थात् जितनी मलीनताएं हैं, उन सबमें से अविद्या परम मलीनता है। इसलिए, हे भिक्षुओ! इस मल को छोड़कर पवित्र बनो।

महात्मा बुद्ध जन्म से वर्ण (जाति) नहीं मानते थे। परन्तु कर्म से मानते थे। धम्मपद में लिखा है:— कोई पुरुष जटाधारी होने से, गोत्र से या ब्राह्मण कुल में पैदा होने से ब्राह्मण नहीं बन जाता, जिस मनुष्य में सत्य और धर्म

पाये जाते हैं, वह पवित्र है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

महात्मा बुद्ध ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया, उनको चार महासत्य कहते हैं, जो निम्नलिखित हैं:—

1. यह जीवन दुखमय है।

2. यह संसार दुखरूप है।

3. इस दुख का कारण वासनाएं हैं।

4. इन वासनाओं को मारने से दुख दूर हो सकते हैं और निर्वाण की प्राप्ति होती है।

इस प्रचार कार्य के लिए उन्होंने भिक्षुओं के संघ स्थापित किए। इन संघों में प्रवेश करते समय निम्नलिखित तीन वाक्य कहे जाते हैं:—

1. बुद्ध शरणं गच्छामि।

2. धम्मं शरणं गच्छामि।

3. संघं शरणं गच्छामि।

सभी भिक्षु पीले वस्त्र धारण करते थे। इस प्रचार से क्षत्रिय धर्म का ह्रास हो गया। साधारण लोग दुनिया को दुखों का घर समझकर, गृह-त्यागकर भिक्षु बनने लगे। स्त्रियाँ भी भिक्षुणियां बनने लगी। सम्राट अशोक ने बुद्ध धर्म ग्रहण करके, अपने बेटे और बेटी को भी क्रमश: भिक्षु और भिक्षुणी बना दिया। उनसे विदेशों में प्रचार कराया गया। इस सम्प्रदाय का प्रचार ईरान, सीरिया, ईराक, खुरासान, लंका, बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, स्याम और कम्बोडिया में हो गया था।

क्षत्रिय धर्म का ह्रास होने के कारण, इस्लाम का एक भी हमला सहन नहीं हो सका। राजा और प्रजा सभी अहिंसा के पुजारी हो गये और एक भी आक्रमण का मुकाबला नहीं कर सके। जिन देशों में बौद्धों का प्रचार हुआ था, वे सभी इस्लाम स्वीकारने लगे। ईरान, ईराक, खुरासान, अफगानिस्तान और भारतवर्ष में भी सिन्ध जैसे प्रदेशों में लोग मुसलमान बन गये।

महात्मा बुद्ध का 80 वर्ष की आयु में गोरखपुर जिले के किशीनगर में स्वर्गवास हो गया।

स्वामी शंकराचार्य

लगभग 2350 वर्ष पूर्व, केरल राज्य के एक छोटे से गाँव कालड़ी में स्वामी शंकराचार्य का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम शिब्बी गुरू जी और माता का नाम सुभद्रा था। उनके पिता शिव मन्दिर के पुजारी थे, इसलिए उनका नाम शंकर रखा गया। लगभग पाँच वर्ष की आयु में उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। पाँच वर्ष की आयु में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। चौदह वर्ष की आयु तक वेद, शास्त्र व उपनिषद पढ़ लिए। इसी आयु में इनकी विद्वता की धूम हो गई। इनका वैराग्य-भाव देखकर, इनकी माताजी ने, इनका विवाह करने की ठानी। परन्तु इतनी अल्पायु में ही, इन्होंने माताजी से सन्यास धारण करने की आज्ञा माँगी, जिसके लिए माँ राजी नहीं हुई।

एक दिन अपनी माताजी के साथ नदी पर स्नान के लिए गए। नदी में स्नान करने उतरे, तो कहते हैं, एक मगरमच्छ ने उनका पैर पकड़ लिया। इस पर शंकर ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना आरम्भ कर दिया। माँ किनारे पर बैठी-बैठी रोने लगी। परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि मेरा बेटा बच जाए, तो मैं उसे सन्यासी बनने की आज्ञा दे दूँगी। देव-कृपा से शंकर मगरमच्छ से छूट गया और माताजी ने उसे सन्यासी बनने की आज्ञा दे दी। कुछ लोगों का मानना है कि शंकर ने जान-बूझकर, सन्यासी होने के लिए, यह योजना बनाई थी, ताकि माँ, सन्यासी बनने का विरोध न करे।

सन्यासी बनते समय, माताजी से यह प्रतिज्ञा की कि जब आप मुझे याद करेंगी, मैं अवश्य आ जाऊँगा। जब उनकी माताजी बीमार हुई और उसने शंकर को याद किया, तो वह माताजी के पास पहुँच गए। अपनी माताजी का दाह-संस्कार वैदिक रीति से, अपने हाथों से किया।

जब स्वामी शंकराचार्य, सन्यासी होकर निकले, उस समय सारे देश में बौद्धों और जैनियों का प्रचार हो चुका था। कुमारिल भट्ट बौद्ध मत से शास्त्रार्थ में हारकर, आत्मघात करके शरीर त्याग चुके थे। स्वामी शंकराचार्य वैदिक विद्वान थे, उन्होंने विचार किया कि वेद-विद्या लुप्त होने के कारण

बौद्ध मत और जैन मत देश में शीघ्रता से फैले हैं और नास्तिकता बढ़ती जा रही है। देश की बड़ी हानि हो रही है। इन मतों को किसी तरह हटाना चाहिए। उन्होंने विचारा कि उपदेश और शास्त्रार्थ से ही यह सम्भव है।

ऐसा विचार करके उज्जैन नगरी में आए। वहाँ उस समय सुधन्वा राजा था। उसने जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ी थी। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे। राजा से कहा कि आप जैन मत मानते हैं, मेरा जैन पण्डितों से शास्त्रार्थ करवाएं। प्रतिज्ञा यह की गई कि जो हारे, दूसरे का मत स्वीकार करना होगा। राजा पक्षपाती नहीं था, वह सत्य को ग्रहण करना चाहता था।

राजा ने शास्त्रार्थ कराया। दूर-दूर से लोग आये। इस शास्त्रार्थ में स्वामी शंकराचार्य विजयी हो गए। सुधन्वा राजा और जैनियों ने, शर्त के अनुसार, वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया। फिर सुधन्वा ने अपने मित्र राजाओं को कहकर, बहुत से राज्यों में जैनियों से शास्त्रार्थ करवाए। प्रत्येक शास्त्रार्थ में जैनियों को पराजय का मुँह देखना पड़ा।

उस समय के राजाओं ने मिलकर, सर्वत्र आर्यावर्त्त में स्वामी शंकराचार्य के उपदेशों का प्रबन्ध कर दिया। उनकी रक्षा के लिए नौकर-चाकर भी रख दिए। उसी समय से यज्ञोपवीत संस्कार होने लगे। वेदों का पठन-पाठन भी प्रारम्भ हो गया। स्वामी शंकराचार्य ने दस वर्ष तक सारे देश में घूम कर जैन मत और बौद्ध मत का इस ज़ोर से खण्डन किया कि लगभग सारे देश से दोनों मत बाहर हो गए।

स्वामी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ मंडन मिश्र के साथ भी हुआ था। इस शास्त्रार्थ की अध्यक्षता मंडन मिश्र की पत्नी श्रीमती भारती ने की थी। कई दिन लगातार, शास्त्रार्थ होने के बाद, स्वामी शंकराचार्य की विजय की घोषणा की गई। दोनों पति-पत्नी बौद्ध मत छोड़कर, शंकराचार्य के अनुयायी हो गए।

स्वामी शंकराचार्य के पास, दो जैनी अपना मत छोड़कर रहने लगे। भीतर से कपटी थे, परन्तु स्वामी जी के विश्वस्त बन गये। इन दोनों ने अवसर पाकर, स्वामी जी को कोई ऐसी विषयुक्त वस्तु खिला दी, जिससे उनकी भूख बन्द हो गई। सारे शरीर में फोड़े व फुंसियाँ निकल आई। केवल 6 महीने में सारा शरीर जर्जर हो गया। 32 वर्ष की छोटी आयु में, 10 वर्ष

प्रचार करके, स्वामी जी का स्वर्गवास हो गया।

स्वामी शंकराचार्य के डर से जैनियों ने अपनी मूर्तियाँ जमीन में दबा दी थी, जो कहीं-कहीं अब भी निकल आती हैं। स्वामी जी ने चार मठ, भारतवर्ष की चारों दिशाओं में (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) स्थापित किये। उत्तर में जोशी मठ, दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन और पश्चिम में द्वारिका में शारदा मठ बनवाये थे।

स्वामी शंकराचार्य ने शैवमत और वाममार्ग का भी खण्डन किया। अपने समय में लुप्त वेद-विद्या का प्रचार करने में स्वामी जी पूर्ण सफल रहे। परन्तु उनके शिष्य बाद में जीव और ब्रह्म को एक बताकर ब्रह्म बन कर बैठ गए।

महर्षि शोषण की आत्मा ने भी संसार के कल्याणार्थ, यहाँ जन्म लिया, जो शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। शंकर के वेदान्त दर्शन को लेकर बढ़े, तो भी कल्याण हो जाए, क्योंकि इसके अनुसार, जहाँ सबमें ब्रह्म प्रतीत होता है, वहाँ न किसी से घृणा होती है और न किसी से द्वेष। वहाँ तो केवल मानवता के अंकुर होते हैं तथा एक विचित्रवाद होता है। हमें उस विचित्रवाद को अपनाना चाहिए, जिससे हम संसार में वैज्ञानिक बन सकें।

स्वामी शंकराचार्य वहाँ जाते थे, जहाँ बौद्धों और जैनियों के आक्रमण होते थे। जहाँ उन्हें मृत्युदण्ड तक देने की योजना बनाई जाती थी। उनको मानने वाले आज तो गुरू बने बैठे हैं, वे वहाँ जाते हैं, जहाँ पुष्प होते हैं, उनके ऊपर छत्र होते हैं। धिक्कार है, उनके जीवन को।

स्वामी शंकर से बौद्ध मत वालों ने कहा था कि आप हमारा खंडन न कीजिए। हमारा जो द्रव्य है, उसे अपनाइए। उस समय शंकर ने कहा था, मैं इस द्रव्य को क्यों अपनाऊँ। मुझे परमात्मा ने इतना ऊँचा द्रव्य दिया है, जो मुझसे जाना नहीं जा रहा है। इस द्रव्य का मैं क्या करूँगा?

शंकराचार्य के हृदय में एक विचारधारा आई कि मैं वैदिकता को ऊँचा बनाऊँ; वेदान्त को लेकर चलूँ और प्रभु की छत्रछाया में रहूँ। ऐसा निश्चय करने के पश्चात्, उनके समक्ष नाना प्रलोभन आए, किन्तु वह सबको नष्ट करता रहा। अनेकों जैनियों तथा गृहस्थियों ने उन्हें प्रलोभन दिए, परन्तु उस महान क्रान्तिकारी ने कहा कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ, मैं अपने उस कार्य को करने आया हूँ, जिसको करने के पश्चात् मुझे महान राष्ट्र की प्राप्ति हो। लोलुपता को नहीं बल्कि यथार्थता को लाना चाहता हूँ।

शंकराचार्य लगभग 2200 वर्ष पूर्व हुए थे, जबकि दयानन्द अभी 18वीं शताब्दी में हुए थे। शंकर के समय में नास्तिकवाद और बौद्धमत छाया हुआ था। दयानन्द के समय में कहीं विदेशी यवन थे, कहीं वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों द्वारा अनेकों त्रुटियाँ भरी हुई थी। दोनों ने मत-मतान्तरों का खण्डन करके वैदिक विचारधारा के प्रति आस्था उत्पन्न की और वेदों के विपरीत कार्यों को नष्ट करने का प्रयास किया।

★ जो मानव संकल्प धारण करता है, उसका जीवन महान बना करता है।
★ जब कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है।
★ अशुद्ध आहार करने से अशुद्ध तरंगों का जन्म होता है और शुद्ध आहार करने से शुद्ध तरंगों का जन्म होता है।
★ आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्म तो बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता।
★ जो जिसके निकट जाता है उसके परमाणुओं उसमें आ जाते हैं।
★ जीवन श्वासों पर आधारित है।
★ योगाभ्यास से चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक आयु हो सकती है।
★ जीवात्मा ज्ञान के द्वारा प्रभु को जान लेता है और प्रयत्न के द्वारा उसमें रमण करता रहता है।
★ आत्मा का भोजन ज्ञान और आभूषण यज्ञ है।
★ जिन कार्यों को करने से मानव के हृदय की गति तीव्र हो जाये वह कार्य अधर्म है और जिन कार्यों के करने से हृदय की गति मन्द हो, सामान्य होती है, वह कार्य कर्त्तव्यवाद में होता है।
★ जो सत्य का पालन करता है, उसके समीप सात्विक प्राणी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।
★ प्राण-शक्ति के सूक्ष्म हो जाने पर मानव रूग्ण हो जाता है।
★ हिंसा ही मानव की मृत्यु है और रक्षा ही मानव का जीवन है।
★ जब स्वार्थवाद नहीं रहता तो मानव एक-दूसरे से स्नेह करने लगता है।
★ स्वार्थवाद में ही कठोरता आती है।

सिक्ख गुरूओं का महत्त्वपूर्ण योगदान

सन् 1600 और 1700 के मध्य का काल अमानवीय कृत्यों का भयावह समय था। मानवता अज्ञानता, पाखण्ड और अन्धविश्वास में गोते लगा रही थी। अन्याय का प्रत्यक्ष प्रतिरोध करने से पूर्व, जिस आत्मबल की आवश्यकता होती है, गुरू नानकदेव ने उसके निर्माण की नींव तैयार की।

गुरू नानक देव जी

लगभग 550 वर्ष पूर्व तलवण्डी नाम के छोटे से ग्राम में जिसका नाम अब ननकाना साहब है (पाकिस्तान के शेखुपुरा जिले में) मेहता कालू राम बेदी के घर गुरू नानक देव जी का जन्म हुआ। उस समय देश में मुगल राज्य स्थापित हो चुका था। बाबर का राज्य-काल था। उस समय पंजाब के हिन्दुओं की अवस्था का वर्णन 'नानक प्रकाश' नामक पुस्तक में निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है:—

"सैयद, शेख, मुगल, पठान वगैरह जितने भी मुसलमान थे, सभी हकूमत के ज़ोर पर ज़ालिम बन चुके थे। सब हिन्दुओं पर बड़े-बड़े जुल्म करते थे। उनको बहुत दुख देते थे, मन्दिरों को गिराते थे और विद्वानों को मरवा देते थे। जो मुसलमान बनने को स्वीकार न करते, उन्हें असह्य दुःख देते थे। यज्ञ व हवन की मनाही कर दी गई। जिसकी औरत या लड़की सुन्दर नज़र आती, मुसलमान उसको पकड़ ले जाते और ज़बरदस्ती उससे निकाह कर लेते। काज़ी लोग जिनके हाथ में न्याय की डोर थी वे रिश्वत लेकर, सच्च को झूठ और झूठ को सच्च बना डालते थे।"

गुरू नानक देव जी ने वैदिक धर्म की ही शिक्षा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। बाला और मरदाना, दो शिष्यों को लेकर, पद-यात्रा करते हुए, दूर-दूर तक प्रचारार्थ गये। यह भी सत्य है कि गुरू नानक देव जी को स्वयं वेद व उपनिषद् पढ़ने का अवसर नहीं मिला क्योंकि वे संस्कृत नहीं पढ़ सके थे।

गुरू नानक देव और दूसरे गुरूओं ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया,

वे निम्नलिखित हैं:—

1. पहला सिद्धान्त वेद ईश्वरकृत हैं और इनमें सत्य ज्ञान का भण्डार है।

ओंकार वेद निर्मये—अर्थात् ओ३म् नाम वाले परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया।

2. असंख्य ग्रन्थ, मुख वेद पाठ। (जपजी साहब)

3. पाँचवें गुरू अर्जुनदेव का कथन है—

"वेद व्याख्यान करत साधु जन,
भागहीन समझत नहीं खल।"

अर्थात् संसार के महापुरूष, सन्त महात्मा व साधुजन वेद का व्याख्यान करते हैं और संसार के कल्याण के लिए वेदोपदेश करते हैं। परन्तु अभागे मूर्ख लोग, अपनी मूर्खता के कारण कुछ समझ नहीं पाते।

4. ईश्वर के स्वरूप के विषय में:—

जन्मे न मरे, आवे न जाए, नानक का प्रभु रहा जगत समाय।

5. **एको सिमरो नानका, जो जल-थल रहा समाय।**
दूजा काहे सिमरिए, जो जम्मे ते मर जाय।।

महर्षि दयानन्द से पूर्व यहाँ महात्मा नानक हुए, जिन्होंने अपना जीवन राष्ट्र के लिए न्यौछावर किया। यवनों से संग्राम के लिए, उन्होंने एक धारा नियुक्त की। आज उनके अनुयायी हिंसा में लग गए हैं। उनको केवल त्वचा का आनन्द चाहिए। मांस भक्षण पूर्ति में ही उनका जीवन संलग्न रहता है। वे स्वार्थी बनकर राष्ट्र का विनाश करने वाले बन बैठे हैं। जो विनाश को प्राप्त हो रहे हैं, वे नानक की पूजा क्यों करें? महात्मा नानक की वही वेदना थी, जो महर्षि पतंजलि, प्रवाहण, अगस्त्य आदि की थी। स्वार्थ के कारण, अब आर्यों की पद्धति नष्ट हो रही है। अब महात्मा नानक की इच्छा पूर्ति भी दयानन्द के अनुयायियों को ही करनी है।

गुरू नानक एक महान आत्मा थी, जिन्होंने संसार का उत्थान किया, धर्म की रक्षा की। परन्तु उनके अनुयायी, उनके मार्ग से इतना दूर चले गए हैं कि वे दूसरों का अपमान करना जानते हैं, परन्तु अपने को ऊँचा नहीं बनाना चाहते। उन्हें अपने क्षत्रियपन को अपनाना चाहिए तथा ऊँचा बनकर चलना चाहिए। अपनी रसना के आनन्द में नहीं आना चाहिए, बल्कि अपने बल की रक्षा करनी चाहिए। नानक के अनुयायियों का पाँच चिन्हों को अपनाना

रूढ़िवाद है। जब क्षत्रियपन की आवश्यकता थी, उस समय इसका महत्व था। अब तो विज्ञान की दृष्टि से ही इस पर विचार होना चाहिए।

गुरू नानक ने कहा था कि रक्त का वस्त्र पर एक बिन्दु भी लग जाने से, वह जल से धोने पर भी नहीं जाता, तो मानव के हृदय तथा अन्त:करण में जब रक्त जाता है, तो क्या वह किसी समय नष्ट हो सकता है। नानक ने मानव बल को ऊँचा बनाया। अपने प्यारे शिष्यों को उपदेश दिया कि धर्म की रक्षा करो। उनके शिष्यों ने वास्तव में धर्म की रक्षा की। बन्दा वैरागी ने अपने शरीर को, यवनों द्वारा नोचे जाने पर भी, यह कहकर मग्नता व्यक्त की कि यह शरीर धर्म की रक्षा के लिए जा रहा है।

गुरू नानक ने कहा था कि रक्त की एक बूँद वस्त्र को नष्ट कर देती है। अरे मानव! तू नाना प्रकार के प्राणियों का रक्त पान करता है, तो तेरा अन्त:करण कितना दूषित हो गया है। उसमें कितने रक्त भरे हिंसा के चिन्ह हो गए हैं? तू कितना दूषित हो गया है कि रक्त के चिन्हों को नष्ट नहीं कर पाता। आज नानक के पुजारी क्या कर रहे हैं? यह सर्व-विदित है।

गुरू अंगद देव—द्वितीय गुरू ने पाखण्डों, मिथ्या आडम्बरों व अन्धविश्वासों से मुक्त उपासना पद्धति के प्रभाव का विस्तार किया। लंगर की परम्परा आपने ही प्रारम्भ की। गुरूमुखी भाषा की रचना की।

गुरू अमरदास—तृतीय गुरू ने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करके 22 उप-गुरू गद्दियों की स्थापना की।

गुरू रामदास—चतुर्थ गुरू ने अमृतसर में 'हरि-मन्दिर' बनवाकर यह प्रमाणित कर दिया कि मानवों के हृदय में (सब में) ही प्रभु विद्यमान है। पुजारी केवल ब्राह्मण ही हो सकते हैं और शूद्र मन्दिर में नहीं जाने चाहिए, इसको आडम्बर और भ्रम बताया।

गुरू अर्जुन देव—पंचम गुरू का समय आने तक गुरूगद्दी की शक्ति, मुगलों की राज शक्ति के बराबर आने लगी। इनका सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में दिया गया चिन्तन महत्वपूर्ण है। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' का सम्पादन कार्य भी प्रारम्भ किया गया।

गुरू हरगोबिन्द—षष्ठम् गुरू ने सिक्ख-आन्दोलन को सैनिक स्वरूप देना प्रारम्भ कर दिया। अत: शाहजहाँ के काल में सशस्त्र प्रतिरोध का जन्म हुआ।

गुरू हरिराय—सप्तम गुरू के काल में संगठन का पुनर्गठन किया गया।

गुरू हरिकृष्ण—अष्टम् गुरू के काल में सिक्ख शक्ति में नई सैनिक शक्ति का विकास हो गया।

सन् 1658 में शाहजहाँ के दो पुत्रों औरंगजेब और दारा शिकोह में दिल्ली के सिंहासन के लिए युद्ध हुआ। देश का दुर्भाग्य कि युद्ध में, औरंगजेब जो कट्टर मुसलमान था, विजयी हुआ। प्रारम्भ में ही औरंगजेब ने मठ और मन्दिरों को गिराने का हुक्म दिया। सन् 1670 में मथुरा के केशवराय मन्दिर को नष्ट कर दिया गया। हिन्दुओं पर तरह-तरह के कर लगाये जाने लगे। सूफी मुसलमानों को भी दण्ड दिया जाने लगा। इतिहास में यह एक अंधकारपूर्ण युग था।

गुरू तेग बहादुर—नवें गुरू के काल में गौ हत्या सरेआम होने लगी। हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जाने लगा। तिलक और जनेऊ (यज्ञोपवीत) उतारे जाने लगे। एक दिन कशमीर के कुछ ब्राह्मण आनन्दपुर साहिब में गुरू तेग बहादुर के पास आए और मुसलमानों के अत्याचारों की कहानियाँ सुनाई। गुरू जी इनकी दु:खभरी बातें सुनकर विचार मग्न हो गए। गुरू गोबिन्द राय उस समय लगभग नौ वर्ष के थे, पिताजी से पूछने लगे कि क्या कारण है? आप चुप क्यों हैं? गुरूजी ने अपने पुत्र से कहा कि इनके ऊपर किये गए अत्याचारों को हटाने के लिए किसी महापुरूष के बलिदान की आवश्यकता है? तब नन्हें गोबिन्द राय ने कहा कि पिताजी आपसे बड़ा महापुरूष कौन है? दु:खी लोग आपकी शरण में आए हैं, इनके दु:ख को दूर कीजिए।

अपने पुत्र के परामर्श से प्रसन्न होकर गुरू तेग बहादुर ने ब्राह्मणों को कहा कि जाओ, औरंगजेब से कहो कि जो बात करनी हो गुरूजी से करो, हम उनकी आज्ञा मानेंगे। गुरू तेग बहादुर दिल्ली गए और औरंगजेब की आज्ञा से इनका सिर काट दिया गया। चाँदनी चौक, दिल्ली गुरूद्वारा शीशगंज खड़ा हुआ, गुरू जी के बलिदान और औरंगजेब के जुल्मों की कहानी सुना रहा है।

गुरू गोबिन्द सिंह—दशवें गुरू गोबिन्द सिंह जी का अलौकिक जीवन था। वह एक ऐसा सन्त था जिसमें आध्यात्मिक गुणों के साथ-साथ क्रान्तिकारी योद्धा के गुण भी थे। वह संस्कृति का रक्षक, राष्ट्र निर्माता, मानवता का

पुजारी और जुल्मों का कट्टर विरोधी था। ऐसा महापुरूष जिसके ऋण से भारतवासी उऋण नहीं हो सकते। उसने अवतारवाद व मानवपूजा की तत्कालीन कुत्सित प्रवृत्ति का स्पष्ट और कठोर शब्दों में विरोध किया। उसने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया कि "मैं ईश्वर नहीं, अपितु ईश्वर का सेवक मात्र हूँ।"

जन्म—धर्म और संस्कृति के रक्षक, अज्ञान और अन्धकार के विनाशक, कर्मयोगी और शहीद गुरू तेग बहादुर के सुपुत्र गुरू गोबिन्द राय का जन्म पटना (बिहार) में माता गुजरी की कोख से 22 दिसम्बर सन् 1666 को हुआ। गुरू तेग बहादुर उस समय प्रचारार्थ आसाम (असम) में थे।

औरंगजेब की दमन नीति के कारण गुरू तेग बहादुर, परिवार को पटना में छोड़ कर, पंजाब आ गये। बाल्यावस्था के पाँच-छः वर्ष गुरू गोबिन्द सिंह को पटना में व्यतीत करने पड़े। बचपन से ही अगम्य साहस और धैर्य के धनी थे। परिवार के साथ सन् 1671-72 में पंजाब अपने पिताजी के पास आकर रहने लगे। जब लगभग 9 वर्ष के थे, तब कश्मीर के ब्राह्मणों का एक प्रतिनिधि-मण्डल, गुरू तेग बहादुर के पास सहायतार्थ आया। गुरू जी को अपने ऊपर मुसलमानों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों से अवगत कराया और कहा, "हमारी रक्षा आपके हाथों में है, हमारे दुःखों का अन्त नहीं है, हमारी रक्षा कीजिए अन्यथा हमारे लिए मृत्यु के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।"

गुरू तेग बहादुर विचार करके, गम्भीरता से बोले, "यदि कोई महापुरूष, अपना बलिदान दे, तभी कुछ हो सकता है।" बालक गोबिन्द माता के पास बैठा, सब सुन रहा था। उसने सुझाव दिया, "पिताजी! इन पण्डितों की रक्षार्थ, यदि महान आत्मा की आहुति ही एकमात्र उपाय है, मेरे विचार से इस समय, भारत में आप से बढ़ कर कौन महान है?" यह बात सुनकर सब सन्न हो गये, परन्तु गुरू तेग बहादुर प्रसन्न हुए। उन्होंने बालक का चुम्बन लिया और मन ही मन यह भी समझ लिया कि होनहार पुत्र गुरूता का भार संभालने के योग्य है।

गुरू तेग बहादुर दिल्ली आये। औरंगजेब ने अनेक प्रलोभन एवं भय दिखाकर, गुरू जी को इस्लाम स्वीकारने को कहा। यह भी कहा कि यदि आप मुसलमान हो गए, तो मैं भी आपका शिष्य बन जाऊँगा। गुरू जी बोले,

"मुझे लालच देते हो, मैं तो अकाल पुरूष की आज्ञा पर चलता हूँ।"

औरंगजेब ने गुरू जी के सामने भाई मति दास को आरे से चीरवा कर दो टुकड़े करवा दिये। गुरू जी विचलित नहीं हुए। गुरू जी ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "तू किस बात का गर्व करता है? शरीर तो न किसी का सदा रहा है, न रहेगा? तेरे जैसे कितने ही संसार में आये और चल बसे। आत्मा अमर है, तू उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जो जन्मता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है।"

11 नवम्बर सन् 1675 सायंकाल गुरू जी को दिल्ली के चाँदनी चौक में ले जाया गया। वहाँ कुएँ पर स्नान किया। निर्दयी औरंगजेब के आदेश पर गुरू जी का वध कर दिया गया। कत्ल के शोर में जीवन नामक व्यक्ति ने शीश को आनन्दपुर ले जाकर विधिवत् संस्कार कर दिया। एक भिश्ती पावन धड़ को अपनी गाड़ी में रूई में छिपाकर अपनी झौंपड़ी में ले गया और झौपड़ी को आग लगा दी। वहीं पर आजकल दिल्ली गुरूद्वारा रकाबगंज बना हुआ है।

गुरू गोबिन्द राय ने अपनी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ कर दिया। सुदुर देशों से आये कवियों को आश्रय दिया। उनके दरबार में 52 कवि हो गये थे। श्रीरामचन्द्र जी व श्रीकृष्ण जी की जीवनी का प्रचार कराने लगे। वीर रस की कविताएं लिखवाकर सुनाई जाने लगी। साथ-साथ स्वयं भी साहित्य सृजन में लगे रहे। सेना का गठन भी आरम्भ कर दिया गया। सेना को प्रतिदिन भांति-भांति के शस्त्रों को चलाने का अभ्यास कराया जाने लगा। एक क्षण भी आध्यात्मिक शिक्षा और अनुशासन की उपेक्षा नहीं की गई।

अप्रैल 1689 में गुरू गोबिन्द राय ने अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ा। आनन्दपुर में रहकर गुरू जी ने युद्ध की तैयारी में चार दुर्ग—लोहगढ़, आनन्दगढ़, केशगढ़ और फतेहगढ़ बनवाए। गुरू जी की शक्ति इतनी बढ़ गई कि पंजाब का शासक दिलावर खां भयभीत हो गया।

गुरू गोबिन्द राय ने दो विवाह किये क्योंकि दोनों कन्याओं के अभिभावकों का कहना था कि उन्होंने कन्याओं का पालन-पोषण गुरू घर के लिए किया है। उनकी एक पत्नी का नाम सुन्दरी था जिससे सन् 1686 में अजीत सिंह नामक पुत्र हुआ। दूसरी पत्नी जीतो जी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—सन् 1690 में जुझार सिंह, सन् 1696 में जोरावर सिंह और सन् 1699 में फतेह सिंह।

अन्धविश्वास दूरी और चण्डी यज्ञ—पण्डित कालीदास के कहने से चण्डी यज्ञ किया गया। चण्डी प्रकट न होने पर पण्डित जी रात में भाग खड़े हुए। गुरू जी पहले से जानते थे कि सब पण्डितों के बनाये पाखण्ड हैं। देवी देवता व्यर्थ आडम्बर है। शेष घृत और सामग्री, एक बार में ही हवन कुण्ड में डलवा दी गई, जिसकी लपटें कई मील तक दिखाई दी थी।

खालसा पन्थ का प्रारम्भ—सोच-विचार कर गुरू गोबिन्द राय ने प्रथम वैशाख सन् 1699 को एक नई व्यवस्था स्थापित करने का संकल्प लिया। व्यवस्था के उत्सव के लिए सभी शिष्यों और भक्तों को आमन्त्रित किया गया। उनका यह कार्य अपनी ही शक्ति से स्थिति का सामना करने के लिए था—इसी से 'खालसा' अस्तित्व में आया। वैशाखी के उस ऐतिहासिक पर्व पर हज़ारों शिष्यों के सामने हाथ में चमचमाती तलवार लेकर गुरू ने प्रश्न किया, "है कोई ऐसा धर्म के लिए इसी क्षण अपने प्राण दे सके।" सभा में चारों तरफ सन्नाटा छा गया। सबके मुख पीले पड़ गये। बारी-बारी से निम्नलिखित व्यक्ति शीश देने के लिए तैयार हुए:—

1. लाहौर निवासी कुलतिलक क्षत्रिय दयाराम
2. दिल्ली का एक जाट धर्मदास
3. द्वारिका का एक धोबी मोहकम चन्द
4. जगन्नाथपुरी का रसोइया हिम्मतराय
5. एक नाई साहबचन्द

पाँचों को स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रों से विभूषित किया गया। उन्हें 'पंच प्यारे' नाम से सम्बोधित किया गया। गुरू जी पानी से भरा लोहे का कढ़ाया मंगाकर, उसमें बताशे घोलकर, पाँचों को पिलाया और फिर स्वयं पीया। अमृतपान के बाद 'पंथ खालसा' की स्थापना की गई। इस प्रकार जाति विहीन एक संगठन बनाया गया। सभी सिक्खों को अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग करने का आदेश दिया। गुरू जी स्वयं भी गोबिन्द राय से गोबिन्द सिंह बन गये। भ्रातृत्व और समानता का आदेश देकर कहा, 'मानस की जात सर्व एक पहिचानबो' सिक्ख समुदाय को 'खालसा' में परिवर्तित कर दिया।

उन्होंने कहा, "वही व्यक्ति पवित्र 'खालसा' है जो सत्य की ज्योति को सदा प्रज्ज्वलित रखता है। एक ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं

मानता। ईश्वर से निश्छल प्रेम में ही उसका तीर्थ, दान, दया, तप सब कुछ समाहित है।" पन्द्रह दिन में 80,000 (अस्सी हज़ार) लोग 'खालसा' में दीक्षित हो गए। ऊँच-नीच और जाति-पाति का भेद-भाव नष्ट कर दिया और सब समान हो गए।

शान्ति के अल्पकाल में अपने शिष्यों को गुरू जी ने आध्यात्मिक और सामाजिक ज्ञान कराया। मुगलों से और पहाड़ी राजाओं से अनेक युद्ध किये। एक-एक सिपाही को सवा लाख दुश्मन दल के बराबर बनाने का नारा दिया। (सवा लाख से एक लड़ाऊँ, तब ही गोबिन्द सिंह नाम कहाऊँ)

चमकौर के युद्ध में गुरू जी के दो पुत्र अजीत सिंह (18 वर्ष) और जुझार सिंह (14 वर्ष) वीरगति को प्राप्त हो गए। पुत्रों के बलिदान के बाद गुरू जी ने कहा, "हे सर्वशक्तिमान परमात्मा! मैंने तेरी अमानत तुझे ही सौंप दी।"

विश्वासघाती गंगाराम ने गुरू जी के दो पुत्रों को धन के लोभ के कारण, सरहिंद के सूबेदार वजीर खान को सौंप दिया। दोनों पुत्रों को इस्लाम स्वीकार करने को कहा गया। मना करने पर जोराबर सिंह (9 वर्ष) और फतेह सिंह (7 वर्ष) को जीवित ही दीवार में चिनवा दिया। दोनों भाई 'सत् श्रीअकाल' कहते हुए धर्म की बेदी पर बलिदान हो गए।

"इन पुत्रन के शीश पर, वार दिए सुत चार।
चार गए तो क्या हुआ? जीवित कई हज़ार।।"

चमकौर का दुर्ग छोड़ने के बाद गुरू जी औरंगजेब के नाम एक पत्र 'जफरनामा' लिखा। इस पत्र की एक-एक पंक्ति में अत्याचारी और पापपूर्ण सत्ता के प्रति घृणा के भाव भरे थे। पत्र पढ़कर औरंगजेब ने यह आज्ञा प्रसारित करवा दी कि गुरू गोबिन्द सिंह को कोई कष्ट नहीं दिया जाए।

सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। सितम्बर 1708 में गुरू जी गोदावरी नदी के तट पर बसे नांदेड़ नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ उनकी भेंट माधोदास नामक एक वैरागी साधु से हुई। गुरू जी ने उसे कर्म का सन्देश दिया। उसे अमृतपान कराया और खालसा पंथ के प्रचार के लिए पंजाब भेज दिया। तभी से उसका नाम 'बन्दा बहादुर' पड़ गया।

गुरू गोबिन्द सिंह जी गोदावरी के तट पर पंचवटी में तप करने लगे। यहाँ उनके साथ अताउल्लाखां और गुलखां नामक दो पठान रहते थे। कई

पीढ़ियों से गुरू जी के घराने का नमक खाते आ रहे थे। वहाँ के हाकिम फीरोज़खां के बहकावे में आकर, गुरू जी को मारने का इरादा कर लिया। एक रात सोते हुए गुरू जी के पेट में गुलखां ने कटार भोंक दी। गुरू जी झट उठकर तलवार का एक हाथ ऐसा मारा, गुलखां का सिर धड़ से अलग हो गया। अताउल्लाखां को पकड़कर शिष्यों ने मार डाला। गुरू जी का घाव अच्छा होने लगा। कुछ दिन बाद गुरू जी एक कमान पर चिल्ला चढ़ाने लगे, तो उनके पेट का घाव फिर फट गया। घाव के टांके टूटने के कारण गुरू जी को अपार पीड़ा हुई। ग्रन्थ को गुरू गद्दी पर आसीन किया और शिष्यों को कहा–

"आज्ञा भई अकाल की तभी चलायो पन्थ।
सब सिक्खन को हुक्म है, गुरू मानियो ग्रन्थ।"

7 अक्तूबर सन् 1708 को 42 वर्ष की कम आयु में गुरू जी का स्वर्गवास हो गया।

"वाहेगुरू जी का खालसा
वाहेगुरू जी की फतेह"

★ प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए।
★ राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए रूढ़ियों का त्याग होना चाहिए।
★ परमात्मा एक है, आत्मा अनेक।
★ मन तभी पवित्र बन सकता है जब अन्न पवित्र होगा।
★ मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम साधना है।
★ अन्न-दोष से साधना नष्ट हो जाती है।
★ मन की गति स्थिर हुए बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता।
★ मस्तिष्क का सम्बन्ध अन्तःकरण के संस्कारों तथा प्रवृत्तियों से होता है।
★ आत्मा के लिए संसार रचा जाता है, रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है।
★ त्रैतवाद ही यथार्थ सिद्धान्त है।

महर्षि दयानन्द

गुजरात प्रदेश के काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के अन्तर्गत मौर्बी राज्य में डेमी नदी के किनारे स्थित एक नगर में 12 फरवरी सन् 1824 को औदीच्य ब्राह्मण कुल में महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री कर्षन तिवारी और माता का नाम यशोदा बाई था। आपका जन्म का नाम मूलशंकर था। आपके पिताजी एक धनी जमींदार और सरकार के राजस्व अधिकारी थे। वे प्रभावशाली कट्टर शैव ब्राह्मण थे। आपकी माताजी सरल स्वभाव की वैष्णवमत की अनुगामिनी थी। अत: दोनों की आपस में कभी-कभी कलह भी हो जाती थी। आपके पिताजी संस्कृत व्याकरण और वेद के मर्मज्ञ थे। माताजी को हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था और रामायण और महाभारत का पूर्ण ज्ञान था। आपके पिताजी के साथ कई अंगरक्षक सिपाही रहते थे। परिवार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं था। आपके माता-पिता के विवाह के 14 वर्ष तक सन्तान नहीं हुई थी। पिताजी अपने उपास्य देव शिव से और माताजी अपने उपास्य विष्णु से सन्तान की प्रार्थना किया करते थे।

नामकरण संस्कार—महर्षि दयानन्द का नामकरण संस्कार जन्म के सौ दिन बाद, उनके दादा और कुल पुरोहित के सहयोग से हुआ। पिताजी ने चाहा था कि पुत्र का नाम शिवजी के नाम पर हो और माताजी चाहती थी कि विष्णु के नाम के अनुसार हो। माताजी और पिताजी दोनों अपने-अपने रूचिकर नाम से महर्षि जी को पुकारते थे। बचपन में रत्नाबाई नाम की धात्री ने इन्हें पाला। स्नान करवाना, खिलाना, पिलाना व बाहर लेकर भ्रमण कराना, सब कुछ रत्नाबाई करती थी।

विद्यारम्भ संस्कार—पाँच वर्ष की आयु में पिताजी ने इनका विद्यारम्भ संस्कार किया था। धर्मशास्त्रों का पाठ, रामायण व महाभारत की कहानियाँ याद कराई गई। आठ वर्ष की आयु में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। सामवेदी ब्राह्मण होते हुए भी आपको यजुर्वेद कण्ठस्थ कराया गया। पिताजी

की इच्छा थी कि मूलशंकर कुल परम्परा के अनुसार शिव का उपासक बने। इसके लिए उसे पूजा और व्रत के महात्म्य बताए गये।

शिव पूजा—14 वर्ष की आयु में, इनके पिताजी ने शिव चतुर्दशी का व्रत धारण करने का आदेश दिया। त्रयोदशी के दिन ही कहा गया कि कल तुम्हें भी उपवास करना है। माताजी मेरी छोटी आयु के कारण, इसको उचित नहीं मानती थी। रात को मूलशंकर, शिवपूजा और जागरण के लिए पिता के साथ शिवालय गये। आधी रात तक पिताजी समेत सभी निद्रा मग्न हो गये। अकेला मूलशंकर पानी के छींटे देकर जागता रहा। उसकी दृष्टि बराबर शिवलिंग पर पड़ी हुई थी। एक विचित्र घटना ने उसकी आत्मा में जागृति सी उत्पन्न कर दी। देखा क्या कि एक चूहा, उछलकर मूर्ति पर चढ़ गया। चढ़ावे की वस्तुओं को खाता हुआ, इधर-उधर दौड़ने लगा। मूलशंकर सोचने लगा कि क्या यही शिव है? जिसकी कथा सुनी थी। यह मूर्ति तो चूहे को भी नहीं हटा पा रही थी। पिताजी को जगाकर, यह शंका कही तो पिताजी ने क्रोध से झिड़क दिया। इस घटना से मूर्ति पूजा में अश्रद्धा हो गई।

छोटी बहिन की मृत्यु—जब मूलशंकर 18 वर्ष के थे, तब उनकी छोटी बहिन, जो 14 वर्ष की थी। हैजे से बहिन 4 घंटे में चल बसी। मूलशंकर ने प्रथम बार मृत्यु देखी थी। जब 19 वर्ष के लगभग आयु थी, तब उनके धर्मात्मा चाचा की मृत्यु हो गई। इन दोनों घटनाओं से उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। इनके 2 छोटे भाई और 2 छोटी बहिन थी। इस प्रकार माता-पिता की 5 सन्तानें थी।

इनके पिताजी ने इनके हृदय में वैराग्य की भावना देखकर, इनका विवाह करने की ठानी। यह देखकर मूलशंकर ने गृह त्यागकर, सच्चे शिव की खोज में चल पड़े। घर में हाहाकार मच गया। चारों तरफ आदमी भेजे गये, किन्तु मूलशंकर का पता न चला। मूलशंकर के घर छोड़ने के बाद सिद्धपुर के मेले में इनकी अपने पिताजी से मुलाकात हुई। क्रोध में पिताजी ने कठोर शब्दों का प्रयोग किया। पुलिस का कड़ा पहरा लगा दिया गया। परन्तु अवसर पाकर फिर भाग निकले। बहुत खोजने पर भी पकड़े नहीं गए। छिपते-छिपते, रातभर चलकर, अहमदाबाद पहुँचे। नर्मदा नदी के किनारे-किनारे चलकर चाणोद पहुँच गए। भूख-प्यास व सर्दी-गर्मी सहन करते हुए, हरिद्वार पहुँचे।

घर छोड़ने के बाद, पहले इनका नाम शुद्ध चैतन्य ब्र० और फिर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने इनको सन्यास की दीक्षा देकर, स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम रख दिया। इधर-उधर भ्रमण करते हुए अनेक योगियों से परिचय हुआ और अनेक ग्रन्थ भी पढ़े। जहाँ भी किसी विद्वान योगी का पता चलता, कष्ट सहन करके वहीं पहुँच जाते थे। सच्चे व विद्वान योगियों का प्रत्येक स्थान अभाव मिला। कहीं पर भी सन्तोषजनक समाधान नहीं मिला। ढोंगी, धोखेबाज और भगवें भेष में, अनेक ठगों से भी उनकी भेंट हुई। उन्होंने सोने की अंगूठी और सोने की चैन, अपनी मूर्तियों पर चढ़वा ली।

इसी भ्रमण काल में किसी ने उनको बताया कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द दण्डी रहते हैं, जो ज्ञान और योग में पारंगत हैं। महर्षि दयानन्द 14 नवम्बर सन् 1860 को जगत गुरू विरजानन्द की पाठशाला में पहुँचे। दरवाजा खटखटाया, अन्दर से आवाज आई, कौन है? दयानन्द ने उत्तर दिया, "यही तो मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कौन हूँ?" गुरू ने समझ लिया, सच्चा शिष्य बनने का अधिकारी है।

गुरू जी ने कहा कि पहले अपने समस्त अवैदिक व अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में बहा आओ। सभी ग्रन्थों को यमुना में फैंककर, लगभग तीन वर्ष तक गुरू के चरणों में बैठकर, आर्ष विद्या ग्रहण की।

गुरू दक्षिणा—विद्या समाप्ति पर दयानन्द ने आध सेर लौंग गुरू के चरणों में भेंट की। गुरू ने कहा, "पुत्र! क्या यही मेरे परिश्रम का फल है?" सभी यह सुनकर चकित हो गये। ऐसा स्वामी विरजानन्द जी ने कभी किसी से नहीं कहा था। दयानन्द जी ने कहा, "मैं अपने जीवन को भी देकर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" गुरू जी ने कहा, "पुत्र, सत्य-शास्त्रों का उद्धार करो। मत-मतान्तरों की विद्या को मिटाओ। वेदों के प्रकाश से इस अज्ञान रूपी अंधेरे को बन्द करो, वैदिक धर्म फैलाओ व आर्ष विद्या को पढ़ाओ।" यही मेरी दक्षिणा है। देशहित और मानव-हित के लिए दक्षिणा ली। शिष्य ने कहा, "आयु-पर्यन्त इसके लिए यत्न करूँगा।" गुरू दक्षिणा को आयु पर्यन्त दयानन्द ने लक्ष्य में रखा।

महर्षि दयानन्द ने 39 वर्ष की आयु में अपना जीवन देश और मानवता की सेवा में लगा दिया। मथुरा, आगरा, ग्वालियर व पुष्कर होते हुए, अनेक विद्वान सन्यासियों से वार्तालाप करते हुए, अप्रैल 1867 में हरिद्वार कुम्भ के

मेले में पहुँचे। सप्त सरोवर के पास गंगा की रेती में, छप्पर डालकर पाखण्ड-खण्डिनी पताका गाड़ दी। इस पताका को देखकर यात्री चकित रह गए। महर्षि दयानन्द का सुडौल व सुन्दर शरीर, तेज से चमकता चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, विशाल वक्षस्थल, हृष्ट-पुष्ट शरीर देखते ही लोग प्रभावित हो गये। मेले की समाप्ति पर महर्षि दयानन्द को लगा कि उनके प्रचार का यथेष्ठ प्रभाव, जनता पर नहीं पड़ा। उन्हें अनुभव हुआ कि मेरे में त्याग व आत्मबल की कमी है।

उन्होंने सोचा कि परोपकार एक महायज्ञ है। इसी को पूर्ण करने के लिए मैं दीक्षित हुआ हूँ। जब तक इसकी पूर्णाहुति में सर्वस्व स्वाहा न किया जायेगा, प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। पुस्तकें त्यागकर, सारे तन पर राख रमाकर, कौपनधारी होकर, मौनावलम्बी हो गये। एक दिन उनकी कुटी के पास आकर यह वाक्य उच्चारण कर दिया कि वेद से भागवत उत्तम है। उन्होंने यह वाक्य सुनते ही मौन-व्रत छोड़कर, भागवत का खण्डन आरम्भ कर दिया।

एक दिन महर्षि दयानन्द, इलाहाबाद में गंगा तट पर भ्रमण कर रहे थे। उसी समय एक महिला विलाप करती हुई गंगा तट पर आई। महिला की गोद में उसके पुत्र का शव था। गंगा नदी में शव बहाने से पूर्व कफन को उतार लिया। कफन को धोकर, हाथ में लेकर चल पड़ी। महर्षि दयानन्द ने उस महिला से पूछा, "माँ! इस कपड़े का मोह क्यों नहीं छोड़ा?" महिला रोकर बोली, "मैं अपनी ही धोती के आँचल को फाड़कर, इसे ढककर लाई हूँ। इसे भी बहा देती, तो मेरा शरीर खुला रह जाता।" महिला का उत्तर सुनकर, स्वामी जी अत्यन्त दुःखी हुए। देश की निर्धनता पर बड़ा दुःख हुआ।

महर्षि दयानन्द ने सारे देश के बड़े-बड़े नगरों में भ्रमण किया। पाखण्ड, अन्धविश्वास और अशिक्षा का पुरजोर खण्डन किया। मूर्ति-पूजा का घोर विरोध किया। कलकत्ता, फर्रूखाबाद, मुरादाबाद, कानपुर व काशी में अनेक शास्त्रार्थ किये। महर्षि दयानन्द की जीवनी का पूर्णतया विवरण कुछ पृष्ठों में नहीं किया जा सकता।

आर्य समाज की स्थापना—संसार का उपकार करने के लिए और वैदिक धर्म को जीवित रखने के लिए, विधवा तथा अनाथों के उत्थान के

लिए 7 अप्रैल सन् 1875 को गिरगाम में डाक्टर मानिक चन्द्र की वाटिका, बम्बई में नियमानुसार आर्य समाज की स्थापना कर दी।

लाहौर में भी इसके दो वर्ष पश्चात् सन् 1877 में आर्य समाज की स्थापना की गई। महर्षि में ब्रह्मचर्य का अखण्ड बल था।

24 जौलाई सन् 1875 को पूना में भाषण देते हुए कहा था, "हमारे देश का नाम, आर्यस्थान अथवा आर्यखण्ड होना चाहिए। उसे छोड़, न जाने 'हिन्दुस्थान' यह नाम कहाँ से निकला? भाई श्रोतागण! 'हिन्दु' शब्द का अर्थ तो काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्थान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश, ऐसाा अर्थ होता है। इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो? आज से 'हिन्दु' नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावृत्त, इन नामों का अभिमान करो। गुणभ्रष्ट हुए, तो हुए, परन्तु नाम भ्रष्ट हमें न होना चाहिए, ऐसी आप सबों से मेरी प्रार्थना है। विचार करो, कि कितने आर्यसमाजियों ने महर्षि की हार्दिक वेदना सहित प्रार्थना को स्वीकार किया है। आजकल अधिकतर आर्यसमाजी अपने को हिन्दू ही कहते हैं।

महर्षि दयानन्द ने स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, जाति-पाति, सभी सम्प्रदायों एवं मत-मतान्तरों का पूर्ण विवेचन करते हुए, वैदिक रीत से प्राणी-मात्र का उत्थान करने का प्रयास किया। ईसाई, मुस्लिम, सिक्ख, हिन्दू, जैन, बौद्ध व पारसी सभी महर्षि को ध्यान से सुनते थे। वे निर्भीक एवं सत्यवादी सन्यासी थे। देश में स्वतन्त्रता के बीज महर्षि दयानन्द ने बोये स्वतन्त्रता-संग्राम में 80% व्यक्ति आर्यसमाज के ही थे। महर्षि विद्या के सागर थे, संयमी और महान तपस्वी थे। उनका जीवन रात-दिन देश, धर्म तथा दूसरों के उपकार में ही बीतता था।

4 अगस्त 1875 को पूना में अपने भाषण में कहा, "आर्य धर्म की उन्नति के लिए मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहिए। ऐसा काम अकेला आदमी नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है, उसे चलाऊँगा। अब अन्त में ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि सर्वत्र आर्यसमाज कायम होकर मूर्ति-पूजादि दुराचार दूर हो जाए, वेद-शास्त्रों का सच्चा अर्थ सब की समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण होकर, देश की

उन्नति हो जावे। पूरी आशा है कि आप सज्जनों की सहायता से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी।"

महर्षि दयानन्द की पुस्तवें विश्व प्रसिद्ध हैं—सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, उपदेश मंजरी व गोकरूणानिधि आदि।

अपने जीवन में महर्षि को अनेक कष्ट सहने पड़े। 17 बार विष दिया गया। स्वामी जी के रसोइया जगन्नाथ ने लालच में आकर दूध में विष के साथ शीशा पीसकर पिला दिया। ऋषि ने कहा, "जगन्नाथ मेरे शरीर के नष्ट हो जाने से बहुत-सा काम अधूरा रह गया।" तुम्हें ये रूपये देता हूँ, इन्हें लेकर तुम नेपाल राज्य में चले जाओ। ऐसा अभयदान कौन दे सकता है?

30 अक्तूबर सन् 1883, अमावस्या मंगलवार का शुभ दिन था। सायं 6 बजे ऋषि ने ईश्वर प्रार्थना की और कहा, "हे दयामय ईश्वर, तेरी यह इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो।" इतना कहकर करवट बदलकर, प्राणायाम करके इस शरीर को त्याग दिया।

महर्षि दयानन्द से बंगाल के एक नेता अश्विनी कुमार दत्त ने पूछा था, "महाराज! मनुष्य के मन में वासना जगे और उसे वह अपनी विचारशक्ति से शान्त करके सत्य पथ से विचलित न हो—यह तो समझ में आता है, किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके मन में कभी वासना जगी या नहीं? यह प्रश्न सुनकर महर्षि दयानन्द ने थोड़ी देर आत्म निरीक्षण किया, फिर उत्तर दिया, "मुझे अपने जीवन में ऐसा कोई अवसर स्मरण नहीं आता जब मेरे मन में कभी कुविचार पैदा हुए हों।" इस पर अश्विनी बाबू ने चकित होकर पूछा, "यह कैसे सम्भव है?" तो ऋषि ने सहज भाव से उत्तर दिया, "मेरे पास करने के इतने काम हैं कि उनसे भिन्न कोई बात मन में सोचने और करने को मेरे पास समय ही नहीं है।"

महर्षि के विचारों ने बौद्धिक जगत में हलचल मचा दी थी। वह भी केवल बीस वर्ष के स्वल्पकाल में। सन् 1863 में वे स्वामी विरजानन्द से दीक्षा लेकर कार्यक्षेत्र में उतरे और उन्हें सन् 1883 तक काम करने का अवसर मिल पाया। इन बीस वर्षों में भी पहले के दस वर्ष तो कार्यशैली निश्चित करने में लग गए। वास्तविक कार्य तो अन्तिम दस वर्षों में ही किया। महर्षि के जीवन काल में ही लाखों व्यक्ति उनके उपदेशों से प्रभावित थे और असंख्य व्यक्ति उनके अनुयायी बन चुके थे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो विद्वान होकर भी धन के आकर्षण में फंस जाता है, वह सच्चाई को जानता हुआ भी प्रकट नहीं कर सकता। महर्षि दयानन्द के समकालीन अनेक विद्वान ऐसे थे, जो उनके पक्ष की सत्यता को हृदय से स्वीकार करते थे, अपने मित्रों में कहते भी थे कि महर्षि कहता तो ठीक है, किन्तु हम स्वार्थवश ऐसा नहीं कह सकते। बड़े-बड़े राजाओं का बेधड़क होकर वही सामना कर सकता है, जो धन (लक्ष्मी) को तृण-तुल्य समझता है।

उदयपुर के महाराणा ने एकलिंग की गद्दी का प्रस्ताव रखते हुए यही तो विनय की थी कि आप भले ही मूर्ति पूजा न करें, किन्तु मूर्ति का खण्डन करना छोड़ दें। उदयपुर का सारा राज्य इस गद्दी को अर्पित है। मैं अभी आपका सेवक बनकर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। महर्षि ने उत्तर दिया, "हम जिस बात को सत्य समझते हैं, उसी का प्रतिपादन करते हैं। यही ईश्वर और वेद की आज्ञा है। मैं ईश्वर की आज्ञा का पालन करूँ अथवा आपके प्रलोभन के प्रस्ताव को देखूँ? मैं आपके राज्य को एक दौड़ में पार करके बाहर जा सकता हूँ, किन्तु क्या प्रभु के राज्य से बाहर जाने की कल्पना भी की जा सकती है?"

इस प्रकार की स्पष्ट बात कोई ऐसा विद्वान ही कह सकता है, जिसके जीवन का उद्देश्य सत्य का प्रचार और उसकी रक्षा ही हो। सत्य-प्रेमी महापुरुष धर्म और सत्य के मार्ग से एक पग भी इधर-उधर विचलित नहीं होते।

महर्षि दयानन्द को संसार की किसी भी वस्तु का लेशमात्र भी आकर्षण नहीं था। धन-धान्य से सम्पन्न गृह को और वैवाहिक साज-सज्जा को तृणवत् त्यागकर घर से निकल भागे। घोर कष्ट सहकर भी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे। बड़े से बड़े भय, महान से महान प्रलोभन भी उन्हें विचलित नहीं कर सके। वे तप और संयम के मूर्त्तरूप थे।

महर्षि दयानन्द के तेरह जन्मों की तपस्या के परिणाम से आज समाज कुछ उत्थान की ओर चला है। इस आत्मा का इससे पूर्व का जन्म शमीक ऋषि का था। उससे पूर्व कोकोतु ऋषि, उससे पूर्व सोमपान और उससे पूर्व कुर्केतु था।

शमीक ऋषि की आत्मा ने यहाँ पुनः आकर जन्म लिया। यह वह महान

विभूति आत्मा थी जिसे प्यार और स्नेह में आकर उसकी माता अटूटी नाम से उच्चारण किया करती थी। उसी शमीक ऋषि की आत्मा ने पुन: से जन्म लेकर कल्याणार्थ अपने जीवन को न्यौछावर किया और 'दयानन्द' कहलाया। इस संसार में जन्म लेकर ही उनका नाम मूल रूप में रखा गया 'मूल शंकर'। इस मूल ने सबसे पहले मूल वेद को ही लिया। उनके हृदय में वेदना यही थी कि मानव को मानवता के क्षेत्र में आ करके मानववाद को लाने में संलग्न हो जाना चाहिए।

महर्षि अटूटी देवयान में रमण किया करते थे, जिनके जीवन की कुछ घटनाएं प्राप्त होती हैं। महर्षि अटूटी की माता का नाम सोमवती था, जो महर्षि कोलसती की पत्नी थी। उसने अपने जीवन में सोचा कि मेरा पुत्र देवयान में विचरण करने वाला हो। पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् माता ने सोचा कि मैं तो अपने बालक को अटूटी नाम से उच्चारण करूंगी, जिसकी आत्मा में अटूट धारणा हो। देवताओं के लिए अपने पुत्र को अर्पण करती हूँ। उस समय उस बालक ने माता के महान आदेशों का पालन करके, ब्रह्मचारी बन करके देवयान का प्रयत्न किया। धारणा, ध्यान, समाधियों में संलग्न होकर अन्तरिक्ष में तीन प्रकार की वायु (1) सोमहिती, (2) मध्यान, (3) वायु में विचरने वाले बने। माता ने उसको आदेश दिया था कि यह देव की अमूल्य निधि है। हे पुत्र! जब-जब यह प्राप्त हो जाए तू इसको ऊँचा बनाना। उसने इस अमूल्य निधि को जानकर देवयान में रमण किया। उसी ने इस कलियुग में आकर, माता के गर्भ में जन्म लिया और जन्म पा करके संसार को ऊँचा बनाने का प्रयत्न किया।

राष्ट्र के प्रति उनमें यह वेदना थी कि जब वह पाश्चात्य शासकों (अंग्रेजों) से वार्त्ता करते, तो स्पष्ट घोषणा करते थे कि मुझे दूसरे देश का शासन सुन्दर प्रतीत नहीं होता। दूसरी वेदना उनके हृदय में थी कि राष्ट्र में चरित्रवाद को लाना है। इसके लिए ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारीरिणयों के लिए भिन्न-भिन्न विद्यालय होने चाहिए, जिससे दोनों पवित्रता में ओत-प्रोत हो जावें।

उनकी शिक्षा पद्धति अरण्य, उपनिषद्, शतपथ आदि पढ़ाने की थी, जिससे हमारी प्राचीन ऋषि-मुनियों की पद्धति पुन: से आकर ऊँचा संसार बन सके। जहाँ कन्याओं का आदर न होकर उन्हें कुदृष्टि से देखा जाता है,

ऐसे दूषित विचार गृह को दूषित किया करते हैं। राष्ट्र में वे ही भ्रष्टाचार के अंकुर बन जाते हैं।

यह संसार स्वार्थियों और दुराचारियों का नहीं रहना चाहिए। जब राष्ट्र में स्वार्थवादियों का साम्राज्य हो जाता है, तो वह विनाश के मार्ग की ओर भ्रष्टाचार की धारा में परिणित हो जाता है।

आज जो विज्ञान पाश्चात्य देशों से आया है, वह सब हमारे दर्शन शास्त्रों में है। पतंजलि के सिद्धान्तों में पूर्णतया मौलिकता है।

निर्लिप्त दयानन्द—महर्षि दयानन्द की महत्ता विचित्र थी कि उन्हें अनेकों द्रव्यों की लोलुपता दी जाती, किन्तु वे कहा करते कि ये मुझे नहीं चाहिए। मुझे इनकी इच्छा नहीं, मुझे इच्छा है अपने राष्ट्र की, अपने समाज की। मेरी पवित्र माताएं अपने कर्त्तव्य का पालन करें, वेद की अनुयायी बनें, वेद के प्रकाश को जानें और वेद की मर्मज्ञानी बनें।

महर्षि दयानन्द ने कहा कि मैं ऐसे राष्ट्रपिता (परमात्मा) के राष्ट्र में हूँ, जहाँ मुझे कोई प्रलोभन नहीं व्याप सकता। प्रलोभन उसको व्यापता है, जो प्रभु को अपने से दूर कर देता है। उनका जीवन, विचारधारा, ब्रह्मचर्य तथा तप बड़ा विचित्र था।

राष्ट्र सुधारक दयानन्द—महर्षि दयानन्द ने एक विचार दिया था कि राष्ट्र में अराजकता नहीं होनी चाहिए। सब प्रजा को सुगठित विचार बनाने चाहिए। आर्यों का एक समाज होना चाहिए तथा उनके सुगठित विचार होने चाहिए। उन्हें वाद-विवाद से रहित होना चाहिए। महर्षि दयानन्द के पुजारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि वह घृणा न करे, क्योंकि घृणा से मानव जीवन का विनाश होता है।

महर्षि दयानन्द ने यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयत्न किया। उस यथार्थ क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि इस राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र वाले छोड़कर चले गए।

विद्या प्रसारक महर्षि दयानन्द—महर्षि दयानन्द ने कहा था कि बुद्धि के अनुसार, संसार की प्रत्येक विद्या को अपनाने का प्रयास करो। उसी को अपनाना हमारा धर्म और मानवता कहलाती है। वह वेद की प्रतिभा, जो अन्त:करण की प्रेरणा है, उसी के आधार पर अपने कार्यों को करते चले जाओ।

महर्षि दयानन्द ने वेद की प्रतिभा के लिए अपने जीवन की आहुति प्रदान कर दी। ईश्वर की प्रेरणा के आधार पर जिनका हृदय और मस्तिष्क, मानसिक वेदना से परिणित होते हैं, उसका मरण हो जाता है। वे संसार के प्रलोभन में नहीं आते। सदैव संसार के द्रव्यवाद से उनका जीवन ऊँचा होता है, विशाल होता है, महत्ता वाला होता है। इसलिए हमें उनके पद-चिन्हों पर चलना चाहिए, उनकी धाराओं को अपनाना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने अपने यथार्थ विचार दिए हैं। परन्तु उनके मानने वाले तो ऐसे अबुध मार्ग तथा ऐसे स्वार्थ में परिणित हो गए, कि उनमें न द्रव्य का त्याग है, न जीवन का त्याग है। जिस बात के लिए उन्होंने अपना बलिदान किया, अपने जीवन की धारा को त्याग दिया। अरे! केवल वाणी के उच्चारण करने से संसार ऊँचा नहीं बनता या धर्म और वेद ऊँचा नहीं बनता। वेद उस कर्म से ऊँचा बनता है जब मानव अपने जीवन को क्रियात्मक बनाता है, महान बनाता है।

आहार के सम्बन्ध में—यहाँ जो भी महापुरुष आया, उसने मानव के आहार को मानव का आहार कहा। महर्षि दयानन्द ने कहा कि जहाँ प्राणी को अन्न प्राप्त नहीं होता, जहाँ केवल मांस ही मांस है, वहां प्राणियों को नहीं रहना चाहिए। उनका कितना ऊँचा आदेश था? आज उनका जो अनुयायी समाज है, यज्ञवेदी पर विराजमान होता है, संकल्प से बद्ध रहता है, पर गृहों में नाना प्रकार के गर्भों (अण्डों) को पान करता है। कहाँ है वह ऋषि का विचार?

महर्षि दयानन्द की महानता—महाभारत के पश्चात् जितनी महान आत्माएं संसार में उत्पन्न हुई, उनमें महर्षि दयानन्द और स्वामी शंकराचार्य जैसी कोई और हो, इसका कोई प्रमाण नहीं। किन्तु शंकर के अनुयायी तो ब्रह्म बनकर यह समझ बैठे हैं कि अब उनको कुछ करने को शेष नहीं। वास्तव में संसार में कार्य करने के लिए, तो तब तक रहता है, जब तक मानव संसार में अन्न ग्रहण करता है। जब तक कार्य करता है, जब तक ब्रह्म की स्थिति नहीं आती। दयानन्द के मानने वाले इतने लालायित हो गए हैं, कि ऋषि के आदेशों को त्यागकर, केवल कटुता में रह गए हैं, उदारता को उन्होंने त्याग दिया है।

महर्षि दयानन्द के विचारों को पूर्ण करने वाले आर्य होते हैं। आर्य श्रेष्ठ

होते हैं, उनका कार्य है, प्रकाश देना। जहाँ प्रकाश होता है, वहाँ अन्धकार नहीं होता, वहाँ विवेक होता है, यथार्थता होती है, उस यथार्थता को लेकर वह भ्रमण करता है और संसार को सुगन्धि देता है।

महर्षि दयानन्द कैसे तपस्वी और दृढ़संकल्पवादी थे कि जहाँ जाते थे, उन पर वज्रों की वर्षा होती थी। उनके अनुयायी आज जहाँ जाते हैं, उन पर पुष्पों की वर्षा होती है। किन्तु उनके वज्र तो पुष्प बन गए और इनके पुष्प वज्र बनते जा रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने त्रैतवाद का प्रसार किया।

ऋषि ने मृत्यु समय अपने शिष्यों से कहा था, यदि तुम संसार में मेरे पथ को ऊँचा बनाना चाहते हो, यह पथ मेरा नहीं है, यह आदि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी तक का यह उद्देश्य है कि यथार्थता और वेद को अपनाते चले जाओ। मैं तो चला हूँ, जैसी प्रभु की इच्छा है, उतना ही कार्य प्रभु ने मुझसे लिया है। अब मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ। परन्तु मेरी जो भूमिका है, मेरा जो विचार है, वह सार्वभौम विचार होना चाहिए, वह विचार संकीर्णता में नहीं रहना चाहिए। आज स्वार्थी प्राणियों ने उनके विचारों को संकीर्ण बना दिया है। उनके विचारों में अब इतना बल नहीं रहा है, कि वे याज्ञिक बन सकें। धर्म शब्द तो व्यापक है, वह कदापि नष्ट नहीं होगा, ऋषि का वाक्य ज्यों का त्यों रहेगा। वह सदैव वायुमण्डल में रमण करता रहेगा, उनके विचार वायुमण्डल में क्रान्ति करते रहेंगे। परन्तु तुम अक्रान्ति, रूढ़िवादी बन करके अपने मानवत्व और उस पथ को त्याग चुके हो, जो पथ वास्तव में ऋषि ने दिखाया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रेरक प्रार्थना

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में पूना में 15 व्याख्यान दिए जो उपदेश मञ्जरी नामक पुस्तक में छपे हैं। पाठकों का ध्यान 24 जुलाई, 1875 को रात्रि आठ बजे दिये व्याख्यान की ओर दिलाना चाहता हूँ, जो निम्नलिखित हैं:—

"ऐसी व्यवस्था होते हुए हमारे देश का नाम 'आर्यस्थान' अथवा 'आर्यखण्ड' होना चाहिए, सो उसे छोड़ न जाने 'हिन्दुस्थान' यह नाम कहाँ से निकला? भाई श्रोतागण! हिन्दु शब्द का अर्थ तो काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्थान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश ऐसा

अर्थ होता है। तो भाई! इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो? और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आर्यावर्त्त कहने से ऐसों का देश, ऐसा अर्थ होता है। सो भाई! ऐसे श्रेष्ठ नाम को तुम क्यों स्वीकार नहीं करते? क्यों तुम अपना मूल का नाम भूल गये हो? हाँ! हम लोगों की यह स्थिति देखकर किसके हृदय को क्लेश न होगा? सभी को होगा। अस्तु, सज्जन जन! आज से 'हिन्दु' नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त्त इन नामों का अभिमान धरो। गुणभ्रष्ट हम लोग हुए तो हुए, परन्तु नामभ्रष्ट तो हमें न होना चाहिए। ऐसी सबों से मेरी प्रार्थना है।"

पाठकों से करबद्ध प्रार्थना है कि महर्षि जी के कहे गए शब्दों पर अवश्य मनन करने की कृपा करें।

★ सशक्त पवित्र आत्म-चेतना से पशुओं का आत्मा भी प्रभावित होता है।
★ जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु भोगों में परतन्त्र है।
★ परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनन्त है।
★ परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' है।
★ किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना सर्वथा असंगत है।
★ संस्कारों के न रहने का कारण ही मोक्ष है।
★ सृष्टि की अवधि निश्चित है।
★ श्वास की गति को शक्तिशाली बनाने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।
★ तपस्विनी माताएँ ही महापुरुषों को जन्म देती हैं।
★ सन्तानों की प्रवृत्तियों एवं विचारों का निर्माण माता द्वारा होता है।
★ योगी के कोटि-जन्मों के संस्कार मस्तिष्क में जागृत हो जाते हैं।
★ विचार और संकल्प से नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं।
★ व्यक्ति, परिवार और समाज के उत्थान के लिए तपस्या अनिवार्य है।
★ भोगी-विलासी का जीवन क्षणिक होता है।
★ कंचन और कामिनी में अधिक लिप्त हो जाना ही मानव की मृत्यु है।
★ जो मानव अशुद्ध उच्चारण करते हैं, अगले जन्मों में परमात्मा उनसे वाणी को छीन लेते हैं।

धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत काल तक सारे विश्व में वैदिक संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार था। लोग धर्म के लक्षण जानते और मानते थे। मनुस्मृति में धर्म के निम्नलिखित दश लक्षण बताए हैं:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् सदा धैर्य रखना; क्षमा करने की प्रवृति व द्वन्द्व सहन करना, मन को सदा धर्म में प्रवृत रखना, चोरी त्याग, रागद्वेष व पक्षपात छोड़कर भीतर की व जल से बाहर की सफाई, इन्द्रियों को संयमित रखना, बुद्धि को शुभ कार्यों में लगाना, यथार्थ ज्ञान, सत्य पर चलना व क्रोध छोड़कर शान्ति आदि गुणों का ग्रहण करना।

धर्म के चार स्तम्भ माने जाते हैं— सत्य, तप, दया और दान। मानवता को ही धर्म कहते हैं। जिसका जीवन धर्म में पिरोया हुआ हो, उसको मानवता कहते हैं। मानव वह होता है जो मननशील होता है।

आजकल धार्मिक होते हुए भी लोग सुखी नहीं हैं। इसका पहला कारण यह है कि संसार में स्वार्थवाद की वृद्धि होने के कारण आन्तरिक संघर्ष आता जा रहा है। दूसरा कारण यह है कि धार्मिकता विचारों में तो है किन्तु उसका अनुकरण तथा आचरण नहीं किया जाता। संसार में विद्वान तो बहुत होते हैं किन्तु उसको अपने क्रियात्मक जीवन में लाने वाले सूक्ष्म होते हैं।

वैदिक साहित्य में धर्म एकवचन माना गया है। धर्म का कदापि विभाजन नहीं होता। मानव मात्र का केवल एक ही धर्म है जिसे वेद कहते हैं। वेद नाम, ज्ञान अथवा प्रकाश का है। अन्धकार को त्यागकर प्रकाश में जाना ही धर्म माना गया है। वेद में सम्प्रदायवाद नहीं होता क्योंकि वेद ईश्वर का ज्ञान कहलाया गया है। आदि सृष्टि में चारों वेदों का ज्ञान 'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद' क्रमशः ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को दिया। धर्म हमेशा एक रस रहता है। सम्प्रदायों में भिन्नता और संकीर्णता

होती है जबकि धर्म में व्यापकता होती है। सम्प्रदाय वहाँ आ जाता है जब एक ही महापुरुष अथवा ऋषि के वाक्य को सार्वभौम स्वीकार कर लिया जाता है। सम्प्रदाय चलने का नाम ही रूढ़ि है। एक ही व्यक्ति के पीछे लगने व चलने वाले सभी सम्प्रदायवादी होते हैं।

जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने एक ही धर्म की विवेचना की है। सुकेतु ऋषि ने स्वाति ऋषि को लोक-लोकान्तर का वर्णन करते हुए बताया था कि किसी लोक में जाओ 'धर्म एक ही है'। इन्द्रियों को संयम में लाने का नाम धर्म है। सत्य ही धर्म का मूल है तथा धर्म की आभा है। 'धर्म' ऐसा शब्द है जैसे वायु सब के लिए समान है। सूर्य का प्रकाश सबके लिए है। अपने कर्त्तव्य को पालन करने का नाम धर्म है। सत्य को सत्य और मिथ्या को मिथ्या कहा जाए, इसी का नाम धर्म है। सत्य-असत्य को जानना मानव का सबसे बड़ा धर्म है।

परमात्मा के नियम तथा यौगिक नियम बुद्धि से परे हैं, उनको जानने के लिये अनुभव व योगाभ्यास की आवश्यकता है। जीवन को उच्च बनाकर आत्मा-रूपी दर्पण पर आए नाना प्रकार के मलों को नष्ट करना है। सत्य को विचारने के लिए अपने को सत्य बनाना आवश्यक है। यदि हम सत्य नहीं तो हम सत्य का निर्णय कभी नहीं कर सकते।

मानव का 'अहिंसा' परम धर्म है। जब मानव की हार्दिक वेदना होती है कि मैं पाप नहीं करना चाहता, तो उसके हृदय के विचार वायुमण्डल में जाते हैं। तब जंगली जानवर भी अपना हिंसा का भाव त्यागकर समीप आ जाते हैं। यही कारण था कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों के आश्रम में सभी जंगली जानवर हिंसा भाव त्यागकर, साथ-साथ विचरण करते थे। इससे सिद्ध होता है, आत्मा का सबसे बड़ा धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" है।

महाभारत काल के पश्चात् अज्ञानतावश एवं स्वार्थवश धर्म का रूप संकुचित कर दिया गया। यज्ञों में अर्थ का अनर्थ करके हिंसा करना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम-स्वरूप लोग वेदों से दूर होने लगे और वेद-विद्या लुप्त होती गई। सर्वप्रथम स्वामी महावीर "अहिंसा परमो धर्मः" का नाद लेकर चले। यह वेद का सिद्धान्त है। महात्मा बुद्ध भी यही नाद लेकर चले। सांसारिक ऐश्वर्य को त्यागकर अनेक राष्ट्रों में प्रचार किया।

जब दुराचार बढ़ने लगा तो लगभग 2200 वर्ष पूर्व स्वामी शंकराचार्य

उत्पन्न हुए। उन्होंने 12 वर्ष की आयु में ही अपनी माता जी से कहा, 'मैं वेद-विद्या द्वारा संसार को जगाना चाहता हूँ।' वेदान्त को लेकर चले। आगे चलकर उनकी मान्यता वाले इतने गम्भीर विषयों पर न जा करके रूढ़िवाद में चले जाएँ, तो उसमें वेद का दोष नहीं है।

इसके पश्चात् अन्य किसी द्वितीय देश में 'ईसा मसीह' उत्पन्न हुए। उन्होंने भारतवर्ष में आकर काशी नगरी में विरंडी नाम के आचार्य से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपने देश में जाकर अनेक कुरीतियों का खण्डन किया जिसके फलस्वरूप उनके विरोधियों ने उन्हें सलीब पर लटका दिया। घायल अवस्था में ही इनके शिष्य इन्हें किसी तरह कश्मीर में ले आये। यहीं पर बाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

हज़रत मोहम्मद की जहाँ जन्म-भूमि थी, वहाँ मद्य (मदिरा) को पान करना, पाषाण-मूर्तियों की पूजा करना और ऋण पर अधिक ब्याज लेना आदि अनेक बुराइयाँ थी। मोहम्मद साहब ने उन्हें दूर करने का आदेश दिया। राष्ट्रवाद में अधिक प्रवृति के कारण, इनके अनुयाइयों ने दूर-दूर तक मार-काट करके अपना शासन बढ़ाने के लिए अनेक अत्याचार किये।

इसके पश्चात् भारतवर्ष में लगभग 500 वर्ष पूर्व, महात्मा नानक उत्पन्न हुए। उन्होंने कहा, 'किसी मानव को किसी जीव का हनन नहीं करना चाहिए। मानवता ऊँची होनी चाहिए'।

सन् 1824 में गुजरात प्रदेश के टंकारा नामक स्थान पर महर्षि दयानन्द पैदा हुए। महर्षि दयानन्द वेद के सन्देश, त्रैतवाद तथा वेद के प्रत्येक अंग को लेकर चले। अपने 59 वर्ष के जीवन में महर्षि ने देश के सुप्त लोगों को जगाया और पुनः वेदों को स्थापित किया। समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। स्वतन्त्रता का बीज बोने वाले महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और सभी सम्प्रदायों को एकत्रित करने का प्रयास किया। महर्षि दिव्य पुरुष थे। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ करके पाखण्ड और अन्धविश्वास को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि स्वामी महावीर से पहले जैन सम्प्रदाय, महात्मा बुद्ध से पहले बौद्ध सम्प्रदाय, ईसा मसीह से पहले ईसाई सम्प्रदाय, हज़रत मोहम्मद से पहले मुस्लिम सम्प्रदाय और गुरू नानक से

पहले सिक्ख सम्प्रदाय भी नहीं था। हिन्दू सम्प्रदाय भी लगभग 2500 वर्ष पूर्व नहीं था क्योंकि हिन्दू भी सम्प्रदाय है, धर्म नहीं।

पूर्व काल में सभी लोग वेदों को जानते और मानते थे। वैदिकता का प्रचार और प्रसार सारी दुनिया में था। महापुरुषों का तो एक ही विचार होता है कि अच्छाइयों को लाने का प्रयास करो तथा कुरीतियों को नष्ट करो। ऐसा ही विचार उपरोक्त सभी महापुरुषों का था।

बाद में सभी महापुरुषों के अनुयाइयों ने अपने-अपने सम्प्रदाय बना लिए हैं। केवल एक महापुरुष को ही मानने वाले लोग सम्प्रदायवादी होते हैं। कुछ लोग तो अपने-अपने महापुरुष को परमात्मा ही मानने लगते हैं। किसी भी ऋषि, मुनि अथवा महापुरुष को परमात्मा कहना असंगत है। महान माताएँ जो तप और त्याग की मूर्ति होती हैं, महापुरुष उत्पन्न किया करती हैं। परमात्मा निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है।

सम्प्रदाय चलने से रक्त-भरी क्रान्तियाँ आती हैं क्योंकि सम्प्रदाय में संकीर्णता और स्वार्थ होता है। प्राचीन काल में विद्वान लोग सम्प्रदाय नहीं बनने देते थे। महाभारत काल में 'नाग' सम्प्रदाय अलग बन गया था, जिसे भगवान श्रीकृष्णजी ने समुद्र तट पर स्थित कालीदेह नामक स्थान पर पुनः वैदिक संस्कृति में मिला दिया था।

आज सरकार का कर्त्तव्य है कि सभी सम्प्रदायों अथवा रूढ़ियों के आचार्यों को एक स्थान पर एकत्रित करें और उनसे धर्म के ऊपर शास्त्रार्थ और विचार-विमर्श करवाए। आधुनिक युग में विभिन्न सम्प्रदायों का इनके मूल में एकीकरण किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्र में शुद्ध आहार तथा सदाचार का नियम बना देना चाहिए, जिससे किसी भी जीव का भक्षण न हो। मनुष्यों ने वेद का विचार त्याग कर सम्प्रदायों में अपने को विभक्त कर लिया है। इनका एकीकरण वेद-विद्या के प्रचार एवं प्रसार द्वारा ही सम्भव है।

★ जिनका इन्द्रियों पर संयम नहीं होता, वे आत्मा का हनन करते हैं।
★ परमात्मा का गुणगान गाने से हृदय में आनन्द की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं।

राजा भोज का प्रेरक श्लोक

महाराजा सिन्धुल परमारवंशीय न्यायकारी एवं विद्वान राजा थे। उनकी राजधानी उज्जैन अथवा मालवा प्रान्त में 'धारा' नामक नगरी थी। उनका एक पुत्र था, जिसका नाम भोज देव था।

बाल्यकाल से ही भोज अत्यन्त विद्यानुरागी एवं प्रतिभावान था। उसके चाचा मुञ्ज और उसके अपने सम्बन्ध की बाल्यकाल की एक घटना लोकप्रसिद्ध है। भोज अभी किशोर अवस्था में ही था, उसके पिता महाराज सिन्धुल का देहान्त हो गया।

भोज की अल्पायु के कारण, उसके चाचा ने राज्य कार्य का भार अपने ऊपर ले लिया। भोज को नवयुवक होते देखकर उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। जल्दी ही अवसर पाकर भोज के चाचा मुञ्ज ने सोचा राज्य के उत्तराधिकारी इस बालक को समाप्त कर राज्य पर अपना अधिकार कर लेना चाहिए।

उसने अपने विश्वस्त एक मन्त्री से कहा—किसी बहाने रात में इसे एकान्त जंगल में ले जाकर खत्म कर दो। मन्त्री बड़ा बुद्धिमान और दूरदर्शी था। उसने सोचा—भोज से प्रजा बहुत प्यार करती है, मन्त्रिमण्डल और राजपरिवार भी उसे बहुत चाहता है। यदि भोज को मार दिया तो प्रजा में विद्रोह का भय था।

अपने विचार को उसने छिपाकर रखा। अवसर पाकर एक रात भोज को एकान्त निर्जन वन में ले जाकर, राज्य-प्रबन्धक मुञ्ज का संकल्प उसके सामने रखा और कहा—बोलो अन्त समय में क्या कहना चाहते हो?

भोज ने ऐसा श्लोक लिखा जो जगत् प्रसिद्ध है और विचार पलटने की सामर्थ्य रखता है। निम्नलिखित श्लोक लिख कर, कहा—यह चाचा को दे देना—

"मान्धाता च महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतो गतः,
सेतुर्येन महादधौ विरचितः क्वाऽसौ दशास्यान्तकः?

अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो ह्यस्तंगता भूतले,
नैकेनाऽपि समं गता वसुमती मुञ्ज! त्वया यास्यति।।"

अर्थात्—मान्धाता जैसे राजा जो सतयुग काल में हुए, चले गये, जिसने समुद्र पर पुल बाँध कर रावण जैसे का अन्त किया, ऐसे रामचन्द्र जी नहीं रहे? और भी दूसरे युधिष्ठिर जैसे सत्यवादी पृथ्वी पर नहीं रहे। कोई भी भूमि (पृथ्वी) को साथ लेकर नहीं गया, परन्तु चाचा मुञ्ज! आप शायद इस भूमि को साथ लेकर ही मरोगे।

किशोर भोज का लेख पढ़कर मन्त्री का हृदय गद्‌गद हो गया। भोज को वापिस लाकर अपने घर में छिपा लिया। भोज की हू-ब-हू मुखाकृति किसी चतुर शिल्पी से बनवा कर—पात्र में रखकर, अगले दिन मुञ्ज को पेश कर दी। मुञ्ज के चेहरे पर कुछ क्षण आन्दोलित भाव उभरे; उसी समय मुखाकृति को हटाकर, मन्त्री ने भोज का श्लोक, उसके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। मुञ्ज ने पढ़ा तो रोने लगा। प्रवाहित अश्रुधारा ने समस्त कलुष को धो डाला। पश्चाताप करने लगा, तो मन्त्री ने भोज के जीवित होने की पूरी कहानी सुनाई। ऐसा प्रेरक श्लोक पढ़कर मुञ्ज राज-पाठ छोड़कर सन्यासी हो गया।

★ जीवन-मुक्त प्राणियों को पाप और पुण्य दोनों नहीं व्यापते।
★ मन विभाजन करने वाला तथा प्राण विभाजित होने वाला है।
★ वेद का ज्ञान सब लोक-लोकान्तरों में है और सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है।
★ वेद का प्रत्येक मन्त्र तथा उसका शब्दार्थ 'ओ३म्' से बिन्धा है।
★ वेद ज्ञान आर्ष है, अमर है।
★ सारी भाषाओं का मूल वैदिक भाषा है।
★ वेदों की रचना मानव नहीं कर सकता। वेद ईश्वरीय वाणी है।
★ संसार में जीवन का श्राद्ध होना चाहिए, मृत्यु का नहीं।
★ यज्ञ मानव का जीवन है।
★ संसार एक कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव जैसी कल्पना करता है, वैसा ही बन जाता है।

वैदिक-अंक-विद्या

क्र.सं.	वैदिक नाम	संस्कृत	हिन्दी	
1.	एका	एक	इकाई	1
2.	दशम्	दशम्	दहाई	10
3.	शतम्	शतम्	सैकड़ा	100
4.	सहस्त्रम्	सहस्त्रम्	हजार	1000
5.	अयुतम्	दश सहस्त्रम्	दस हजार	10000
6.	नियुतम्	लक्ष:	लाख	100000
7.	प्रयुतम्	दश लक्ष:	दस लाख	1000000
8.	प्रयुताम्	कोटि:	करोड़	10000000
9.	अर्बुदम्	दश कोटि:	दस करोड़	100000000
10.	न्यर्बुदम्	वृन्द:	अरब	1000000000
11.	दशार्बुदम्	खर्ब:	दस अरब	10000000000
12.	समुद्र:	निखर्ब:	खरब	100000000000
13.	दशसमुद्र:	शङ्ख:	दस खरब	1000000000000
14.	मध्यम्	पदम्	नील	10000000000000
15.	दशमध्यम्	सागर:	दस नील	100000000000000
16.	अन्त:	अन्त्य:	पदम्	1000000000000000
17.	महान्त:	मध्य:	दस पदम्	10000000000000000
18.	परार्ध:	परार्ध्य:	शङ्ख	100000000000000000
19.	महापरार्ध:	महापरार्ध:	महाशङ्ख	1000000000000000000

एक-अंक जोड़, गुणा, बीजाङ्क, रेखाङ्क तथा विषमाङ्कों के रूपों में व्याप्त है और 0 और 1 से 9 अंक भी सम्पूर्ण गणित में व्याप्त है। ऐसे ही एक स्त्रष्टा सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

संस्कृत शब्दों से ही सारे भूमण्डल के देशों के नाम निकले हैं:—

1.	आर्यखंड	आयर्लैण्ड
2.	त्रिविष्टप	तिब्बत

3.	पवित्रखंड	स्विटजरलैण्ड
4.	सुयोधन	स्वीड्न
5.	ब्रह्मदेश	बर्मा
6.	वलउच्चस्थान	बिलोचिस्तान
7.	पालीस्थान	पैलिस्टाइन
8.	गिरीश	ग्रीस
9.	तुर्शस्थान	तुर्किस्थान
10.	चीन	चीन
11.	मुद्गल	मुगल
12.	आर्यस्थान	ईरान
13.	उद्यान	अदन
14.	यवन	यूनान
15.	जातखंड	जटलैंड
16.	अवगहनस्थान	अफगानिस्तान
17.	मेरूगृह	अमेरिका
18.	अवरगृह	अफ्रीका
19.	राष्ट्रालय	आष्ट्रेलिया
20.	नवजीवखंड	न्यूजीलैण्ड
21.	ऋषयदेश	रशिया, रूस
22.	आर्षदेश	एशिया
23.	नारावज	नार्वे
24.	धेनुमार्ग	डेनमार्क
25.	शर्मन देश	जर्मन देश
26.	राष्ट्रः	आस्ट्रिया
27.	बलिजन्म	बेलजियम
28.	मक्षिगृह	मैक्सिको
29.	कश्यपस्थान	केस्पियन
30.	आर्यावर्त्त	भारतवर्ष

ब्रह्म-स्तोत्र

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय।।

अर्थ:—हे जगत् के कारण, सदा रहने वाले प्रभो! तुम्हें नमस्कार हो। हे चेतन स्वरूप, सर्वलोक के आश्रय! तुम्हें प्रणाम हो। हे मुक्ति के देने वाले, अद्वैतत्व! तुम्हें हम नमन करते हैं। हे सदा रहने वाले, सर्वव्यापक, परब्रह्म! तुम्हें हमारा बारंबार प्रणाम हो।।

भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकम्,
परेषां परं रक्षणं रक्षाणानाम्।।

अर्थ:—हे परमात्मन्! आप भयों को भी भय देने वाले हो, आप भीषणों से भी भीषण हो, आप प्राणियों की गति और पवित्रों के पवित्रकर्त्ता हो। आप बहुत ऊँचे पदों के एक मात्र नियन्ता हो; आप परों से भी परे और रक्षकों के भी रक्षक हो।।

वयं त्वां भजामो वयं त्वां स्मरामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं ब्रजामः।।

अर्थ:—हे परमात्मन्! हम आपका ही भजन करते हैं और आपको ही स्मरण करते हैं। हे प्रभो! हम आपको ही सबका साक्षी जानकर नमन करते हैं। आप एक हैं और सबके आधार हैं। संसार रूपी समुद्र में रक्षा करने वाले आप ही जहाज हैं, हे प्रभो! हम आपको ही प्राप्त होते हैं।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्-पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्-कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।।

अर्थ:—हे प्रभो! आप ही एकमात्र हमें शरण देने वाले हो, आप ही जगत् के पालक और स्वप्रकाशक हो, आप ही अकेले जगत् के कर्त्ता, पालक और संहारक हो, आप ही एक, सबसे बड़े, अचल और विकार रहित हो।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

अर्थ:—हे परमात्मन्! आप ही हमारे पिता और आप ही हमारी माता हैं। आप ही हमारे बन्धु और आप ही सखा हैं। हे स्वामिन्! आप ही हमारी विद्या और आप ही हमारे धन हो। आप ही मेरे सर्वस्व और उपास्य देव हो।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्,
तं देवातानाम् परमं च दैवतम्।
पतिं पतिनां परमं परस्ताद्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।

अर्थ:—हे प्रभो! आप महेश्वरों के भी महेश्वर हो और देवताओं के भी परम देव हो। आप पतियों के भी अधिपति और परों से भी परे हो। हे सर्वजगत् के शासक! हम सदा आपकी स्तुति और गुणगान करते रहें।

यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य औषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।।

अर्थ:—जो भगवान् स्वशक्ति से अग्नि में विद्यमान है, जो जलों में विद्यमान है, जो सकल भुवन को घेर कर उसमें प्रविष्ट है, जो अन्नों में विद्यमान है और जो वनस्पतियों में विद्यमान है, उस देव को बार-बार नमस्कार।

ईश-वन्दना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

सब का भला करो भगवान्,
सब पर दया करो भगवान्।
सब पर कृपा करो भगवान्,
सबका सब विधि हो कल्याण।।

हे ईश! सब सुखी हों, कोई न हो दुखारी,
सब हों नीरोग भगवन्! धन्य-धान्य के भण्डारी।
सब भद्र-भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों,
दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी।।
सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय,
यह अभिलाषा हम सबकी भगवन् पूरी होय।
विद्या-बुद्धि-तेज-बल, सबके भीतर होय,
दूध-पूत-धन्य-धान्य से वंचित रहे न कोय।।
आपकी भक्ति प्रेम से मन होवे भरपूर,
राग-द्वेष से चित्त मेरा कोसों भागे दूर।
मिले भरोसा आपका हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे नाम की बनी रहे मम ईश।।
पाप से हमें बचाइए करके दया दयाल,
अपना भक्त बना करके सबको करो निहाल।
दिल में दया-उदारता मन में प्रेम अपार,
हृदय में धैर्य-वीरता सबको करो करतार।।

वैदिक नियम

1. परमात्मा का मुख्य और निज नाम 'ओ३म्' है।
2. धर्म एक ही है—वैदिक धर्म। वेद का अर्थ है ज्ञान अथवा प्रकाश।
3. चारों वेद—परमात्मा का संविधान हैं।
4. हिन्दु, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, यहुदी व पारसी सभी सम्प्रदाय हैं।
5. किसी भी महापुरूष को परमात्मा कहना असंगत है।
6. किसी एक ही महापुरूष को मानने वाले सम्प्रदायवादी व रूढ़िवादी होते हैं।
7. राष्ट्र की एकता के लिए रूढ़ियाँ व सम्प्रदाय बहुत हानिकारक होते हैं। अत: समाप्त होने चाहिए।
8. धर्म की रक्षा के लिए राष्ट्र की स्थापना की जाती है।
9. राष्ट्र का भूषण अथवा गहना धर्म ही होता है।
10. वेद-विद्या लुप्त होने के कारण, महाभारत काल के पश्चात् सभी सम्प्रदाय अथवा मत पनपे हैं।
11. राष्ट्र में अहिंसा परमो धर्म होता है। किसी छोटे से छोटे जीव की भी हिंसा नहीं होनी चाहिए।
12. गाय हमारी माता है, इसे राष्ट्रीय पशु घोषित करना चाहिए।
13. संसार में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति, तीनों ही अनादि हैं।
14. आत्मा व परमात्मा चेतन सत्ता वाले हैं और रूपरहित हैं।
15. प्रकृति जड़ हैं और सभी रंगीन पदार्थ इससे बने हैं।
16. प्रकृति हमारी माँ है, इसका सदुपयोग ही इसकी पूजा है।
17. धर्म के चार स्तम्भ—सत्य, तप, दया और दान हैं।
18. धर्म के लक्षण, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध हैं।
19. मानव शुद्ध शाकाहारी होना चाहिए।
20. अपने देश का नाम भारतवर्ष अथवा आर्यावर्त्त होना चाहिए। जब कई राज्यों के नाम बदले गए हैं, तो देश का भी बदलना चाहिए।
21. सारे विश्व में वैदिक संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार करके वैदिक समाज की स्थापना अत्यावश्यक है।
22. यम-नियम का पालन करना प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य होना चाहिए।

वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरं इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्नाशु सप्ति पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।। (यजुर्वेद 22/22)

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हो, द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हो, अरिदल-विनाशकारी।।
होवें दुधारू गौएं, पशु अश्व-आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही।।
बलवान सभ्य योद्धा, यजमान-पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य पाप धोवें।।
फलफूल से लदी हो, औषध अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी।।